स्वतन्त्र भारत के

योग्य अध्यापकों

और

उत्साही छात्रों को

जिन पर उदीयमान देश के

ज्ज्वल भविष्य की आशा अवलम्बित है

आस्ते भग आसीनस्य । ऊर्ध्वस्तिष्ठति तिष्ठतः ।
शेते निपद्यमानस्य । चरति चरतो भगः ।

—वेद

बैठने वाले का भाग्य भी बैठ जाता है । खड़े होने वाले का भाग्य भी खड़ा हो जाता है । सोने वाले का भाग्य भी सो जाता है । पुरुषार्थ करने वाले का भाग्य भी गतिशील हो जाता है । अतः सदा गतिशील रहो ।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।

—उपनिषद्

उठो ! जागो !! और श्रेष्ठ जनों के पास जाकर उनसे उत्तम ज्ञान एवं चेतना प्राप्त करो ।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।

—गीता

अपना उद्धार स्वयं करो तथा अपने को नीचा और निराश मत बनाओ ।

—

संबोधन

(१) आप सो रहे हैं !

प्रिय छात्रो ! स्वतन्त्रता प्राप्त करने के बाद हमारे देश में अनेक क्षेत्रों में बहुत विकास हुआ है। पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा बिजली, सिंचाई, खेती, उद्योग, व्यापार, शिक्षा आदि की दिशाओं में प्रगति हो रही है। आशा की जाती है इससे देश में सुख-समृद्धि का विस्तार होगा। किन्तु दूसरी ओर देश के आन्तरिक जीवन और सामाजिक व्यवहार में अनेक दोष बढ़ते जा रहे हैं। इन्हीं दोषों के कारण हमारे राष्ट्रीय जीवन में स्वतन्त्रता का हर्ष-उल्लास भी प्रति वर्ष मन्द होता जा रहा है। बाहरी विकास के प्रयत्नों में हमारे देश का आन्तरिक जीवन गर्त में जा रहा है। शिक्षा की दशा भी अच्छी नहीं है, जिस पर देश का भविष्य और युवकों का जीवन निर्भर है। युवक देश के कर्णधार हैं। अच्छी शिक्षा के द्वारा वे अपने जीवन को कृतार्थ और देश की प्रतिष्ठा को उन्नत बनाने में समर्थ होते हैं।

शिक्षा की जैसी दुर्दशा है उसकी चर्चा आज चारों ओर सुनाई देती है। आप भी उस दुर्दशा का अनुमान अपने एवं अन्य विद्यालयों के परीक्षाफल तथा अपनी और अपने साथियों की योग्यता को देखकर लगा सकते हैं। भारत के सभी प्रदेशों की सरकारें तथा सभी शिक्षा-अधिकारी शिक्षा की इस गिरती हुई दशा से चिन्तित हैं। कोई छात्रों की अनुशासन-हीनता से क्षुब्ध हैं, तो दूसरे छात्रों की योग्यता के गिरते हुए स्तर से व्यथित हैं। स्वतन्त्रता की इस प्रभात-वेला में देश की अधोगति पर चारों ओर क्रन्दन-कोलाहल हो रहा है।

किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि आप सो रहे हैं। आप अपनी शिक्षा की दशा को सुधारने के लिए स्वयं न अधिक चिन्तित हैं और न अधिक

प्रयत्नशील है। दूसरे लोग आपकी शिक्षा और उन्नति का बाहरी प्रबन्ध कर सकते हैं किन्तु उन्नति का उद्योग आपको स्वयं ही करना होगा। दूसरे मार्ग बना सकते हैं किन्तु उस पर चलना आपको ही होगा। अतः उठो ! जागो ! अपनी शिक्षा की दशा पर स्वयं विचार करो और अपने उद्धार का प्रयत्न अपने आप करो। वेद का यह मंगल-मन्त्र आपके ज्ञान-चक्षु का उन्मीलन कर रहा है कि "सोने वाले का भाग्य भी सोता है और जागने वाले का भाग्य भी जागता है।" उपनिषदों के दिव्य-दृष्टा ऋषि आपको उत्तम विद्या का मार्ग दिखा रहे हैं कि "उठो ! जागो ! और श्रेष्ठ जनों के पास जाकर उत्तम विद्या एवं चेतना प्राप्त करो।" गीता के गायक जगद्गुरु श्री कृष्ण का शंखनाद आपको उद्बोधित कर रहा है कि "अपना उद्धार स्वयं करो।"

(२) यह पुस्तक

यह पुस्तक आपके लिए एक उत्तम मित्र के समान है। उत्तम मित्र वही है जो आपको अच्छी सलाह देता है और आपको उन्नति का मार्ग दिखाता है। यह पुस्तक आपको शिक्षा के सम्बन्ध में अच्छी सलाह देगी और जीवन में उन्नति का मार्ग दिखाएगी। उत्तम मित्र की भाँति इसे अपने साथ रखिए। जब अवकाश मिले तभी इसके मन्त्रों का मनन कीजिए। इसके १०८ मन्त्र छात्रों की जीवन-माला के मोती हैं। प्रत्येक मन्त्र आपके जीवन को प्रकाशित कर उसे ऊँचा उठाने वाला है।

परीक्षा के लिए आप पचासों बड़ी २ पुस्तकें पढ़ते हैं। इनमें कोई भी पुस्तक आपको यह नहीं बताती कि जीवन का उत्तम लक्ष्य क्या है और उसे प्राप्त करने का मार्ग क्या है ? कोई भी पुस्तक यह नहीं बताती कि आप जीवन में उन्नति किस प्रकार कर सकते हैं; आपकी

शिक्षा में कौनसी दुर्बलताएँ हैं और उन्हें दूर करने के उपाय क्या हैं ? ये पुस्तकें भिन्न भिन्न विषयों से सम्बन्ध रखती हैं और उनका ज्ञान आपको देती हैं। यह ज्ञान ही 'विद्या' कहलाता है। आपका यह ज्ञान भी अनेक दुर्बलताओं के कारण दुर्बल रहता है और प्रायः आपका परीक्षाफल उत्तम नहीं रहता। इससे आपकी उन्नति का मार्ग भी रुक जाता है। कोई भी पाठ्य पुस्तक आपको यह नहीं बताती कि उत्तम विद्या का रूप क्या है और उत्तम विद्या द्वारा उत्तम परीक्षाफल प्राप्त कर आप किस प्रकार जीवन में उन्नति कर सकते हैं।

यह छोटी-सी पुस्तक आपको श्रेष्ठ और सफल जीवन का मार्ग बताएगी। यह पुस्तक उत्तम विद्या के रहस्य और मार्ग प्रकाशित कर परीक्षाफल को उत्तम बनाने में आपकी सहायता करेगी। इस पुस्तक के मन्त्रों का अनुशीलन कर अपनी शिक्षा-सम्बन्धी दुर्बलताओं को दूर कीजिए और जीवन में उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़िए।

(३) व्यावहारिक उपदेश

इस पुस्तक के सारे उपदेश व्यावहारिक हैं। आप उन सबको बड़ी सरलता से व्यवहार में ला सकते हैं। व्यवहार में लाने पर आपको इनका मूल्य विदित होगा। शिक्षा और जीवन के सम्बन्ध में ऊँचे आदर्शों की बात करना बहुत सरल है। हमारे देश में इन आदर्शों का अभिनन्दन दिन रात होने वाले भाषणों में सुनाई देता है। देश के नेता आदर्शों की प्रेरणा देकर जनता को उद्बोधित करते हैं। छात्रों को देश का भावी नेता बताकर उन्हें महान् आदर्शों के सन्देश दिये जाते हैं। किन्तु ऊँचे आदर्शों के उपदेश मात्र से किसी देश का उद्धार नहीं हो सकता। मौखिक आदर्श सच्ची प्रेरणा नहीं दे सकते। सच्ची प्रेरणा नेताओं के जीवित आदर्श से मिलती है। किन्तु जीवित आदर्श प्रस्तुत करना उतना ही कठिन है, जितना कि मौखिक उपदेश देना सरल है।

इस पुस्तक में ऐसे ऊँचे आदर्शों की चर्चा नहीं की गई है जो अव्यावहारिक हों। इसमें जिन आदर्श बातों का समावेश है वे सभी व्यावहारिक हैं। आदर्शों की बातें इसमें कम ही हैं। आपकी शिक्षा; परीक्षा और उन्नति से सम्बन्ध रखने वाली ऐसी बातें ही इसमें अधिक हैं जो यथार्थ और उपयोगी हैं। इन बातों को व्यवहार में लाकर आप शिक्षा और जीवन के क्षेत्र में उन्नति कर सकते हैं। प्राय: उपदेशों में ऐसी बातें कही जातीं हैं जिनका उन लोगों से कोई सम्बन्ध नहीं होता जिनको उपदेश दिया जाता है। छात्रों को अधिक अन्न-उत्पादन में सहयोग देने का उपदेश दिया जाता है। इस पुस्तक में केवल वे ही बातें कही गई हैं जिनका छात्रों से सीधा सम्बन्ध है। ये सारी बातें छात्रों के करने की हैं और उनको करने से छात्रों का हित होगा। छात्रों के अपने उद्योग से ही शिक्षा की उन्नति सम्भव है। शिक्षा की व्यवस्था, अध्यापकों की प्रतिष्ठा, परीक्षा-प्रणाली आदि ऐसी बातों की चर्चा बहुत कम की गई है, जिनके सम्बन्ध में छात्रों के करने की कोई बात नहीं हैं। इन बातों का सम्बन्ध सरकार और अधिकारियों से है।

(४) मनन कीजिए

इस पुस्तक में शिक्षा और जीवन के सम्बन्ध में जितनी बातें बताई गई हैं वे सब व्यावहारिक हैं अर्थात् आप इन्हें प्रयत्न से व्यवहार में ला सकते हैं। सभी बातें जीवन की यथार्थता को ध्यान में रख कर कही गई हैं और उन सबका आपसे सीधा सम्बन्ध है। वे आपके ही करने की और आपके ही योग्य बातें हैं। इसमें ऊँचे एवं अव्यावहारिक आदर्शों के उपदेश नहीं हैं और न ऐसी बातें हैं जिनका आपसे सीधा सम्बन्ध नहीं है। इस पुस्तक की व्यावहारिक बातों का पालन कर आप अवश्य ही शिक्षा और जीवन में उन्नति कर सकेंगे।

किन्तु इन बातों को व्यवहार में लाने के लिये इनको भलीभाँति

समझना आवश्यक है। इन बातों का आशय समझने पर ही इनका व्यवहार सम्भव और सफल हो सकता है। जहाँ तक हो सका है इस पुस्तक की भाषा सरल और शैली स्पष्ट है। गम्भीर विचारों को भी सीधे ढंग से प्रस्तुत किया गया है। सरल भाषा में गम्भीर विचार छात्रों के सामने रखना ही हमारा लक्ष्य रहा है। छोटे छोटे वाक्यों में बड़े महत्व की बातें सरलता से कही गई हैं। अतः इस पुस्तक का बहुत-सा अंश आप सुगमता से समझ सकेंगे और समझ कर व्यवहार में ला सकेंगे।

किन्तु इसकी सरल भाषा एवं ऋजु शैली में भी जीवन और शिक्षा सम्बन्धी अनेक गम्भीर तत्वों का विवेचन हुआ है। ये गम्भीर तत्व जीवन एवं शिक्षा की अनेक मूल्यवान बातों को समझाने के लिए आवश्यक हैं। अतः इनकी उपेक्षा नहीं की गई है। अस्तु सरल होने के कारण इस पुस्तक की बातें कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। आप इनका ध्यानपूर्वक मनन कीजिए। इनका जितना गम्भीर मनन आप करेंगे उतने ही अधिक मूल्यवान् संकेत आपको इनमें मिलेंगे। इस पुस्तक के विचार-तत्वों का मनन करने से आपका विचार भी गम्भीर बनेगा। विचार की गम्भीरता श्रेष्ठ शिक्षा का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण रहस्य है। यही मनन आपके "स्वाध्याय" की भूमिका बन सकता है।

(५) परस्पर विचार कीजिए

एकान्त में मनन करने से गम्भीर विचारों की गहराइयाँ समझ में आती हैं; साथ ही अपने विचार भी गम्भीर होते हैं। किन्तु अपने में ही सीमित रहने से विचारों के पूरे आशय समझ में नहीं आते। अपने में सीमित रहना कूप-मण्डूकता है। जिस प्रकार कुए का मेंढक बाहरी संसार और सागर के विस्तारों को नहीं जानता, उसी प्रकार अपने ही विचारों में सीमित रहने वाले ज्ञान के विस्तृत क्षेत्रों और ज्ञान की गम्भीर महिमा से अपरिचित रहते हैं। अतः जहाँ गम्भीर विचारों को

आत्मसात् करने के लिए एकान्त मनन आवश्यक है वहाँ उन विचारों के सूक्ष्म और नवीन रहस्यों के प्रकाशन के लिए उनके सम्बन्ध में परस्पर विचार-विनिमय भी अपेक्षित है। आपस में विचार करने से इस पुस्तक के विचारों के सम्बन्ध में भी आपको नए नए और सूक्ष्म रहस्य विदित होंगे। इस प्रकार इनके सम्बन्ध में आपका ज्ञान भी गम्भीर होगा और जीवन में इनका व्यवहार भी अधिक फलदायक होगा।

अतः जब कभी आपको अवसर मिले तब और जहाँ कहीं चार साथी एकत्र हों वहाँ आप इस पुस्तक में कही गई बातों के सम्बन्ध में आपस में मिलकर विचार कीजिए। आपने इनके बारे में जो कुछ समझा है वह दूसरों को विनयपूर्वक बताइए और दूसरों ने इनके बारे में जो कुछ समझा है वह आप उनसे समझने की चेष्टा कीजिए। इस प्रकार विचार-विनिमय और विचारों के आदान-प्रदान से जीवन एवं शिक्षा के महत्व-पूर्ण तत्वों के सम्बन्ध में आपका ज्ञान अधिक गम्भीर और परिमार्जित होगा। परस्पर विचार-विनिमय का प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में बड़ा महत्व था। यह कहा जाता था कि 'वादे वादे जायते तत्वबोधः' अर्थात् परस्पर विचार-पूर्ण वार्तालाप से नवीन तत्वों का बोध होता है। इस पुस्तक में कही गई बातों के सम्बन्ध में परस्पर विचार को ही आप अपनी शिक्षा में 'सहाध्याय' की भूमिका मान सकते हैं।

(६) गुरुजनों से परामर्श कीजिए

सभी छात्रों की समझ में इस पुस्तक के विचार सुगमता से आ सकें इसलिए इसकी भाषा बहुत सरल रखी गई है। विचारों की व्यंजना भी बहुत सरल और स्पष्ट ढंग से की गई है। किन्तु शिक्षा और जीवन से सम्बन्ध रखने वाले अनेक महत्वपूर्ण तत्व इस पुस्तक के लघु मन्त्रों में समाहित हैं। भाषा और शैली में सरल होते हुए भी ये मन्त्र विचार-तत्व की दृष्टि से गम्भीर हैं। भाषा और शैली की सरलता के कारण

आप इन गम्भीर तत्वों को भी बहुत कुछ अपने आप समझ सकेंगे। इन पर बार बार मनन एवं चिन्तन करने से इन मूल्यवान् तत्वों की गहराइयों में भी आपकी गति होगी। आपस में मिलकर विचार करने से इन तत्वों के अनेक सूक्ष्म एवं नवीन रहस्य आपके सामन प्रकाशित होंगे।

फिर भी यह सम्भव है कि कुछ बातें पूरी तरह आपकी समझ में न आएँ और कुछ गम्भीर तत्वों के सूक्ष्म रहस्य आपके लिए रहस्य ही बने रहें। यदि ऐसे तत्व इस पुस्तक को पढ़ते समय आपके सामने आएँ तो इनकी उपेक्षा न कीजिए। अपने गुरुजनों के पास जाकर उनसे परामर्श कीजिए। वे उन दुर्गम रहस्यों को सुगम बनाएँगे। उनसे परामर्श करने पर आपको इस पुस्तक की बातों का ज्ञान अधिक पूर्ण होगा। गुरुजनों का सम्पर्क स्वयं उत्तम शिक्षा का एक गम्भीर रहस्य है, जिसका वर्तमान शिक्षा में समुचित स्थान नहीं है। इस पुस्तक की जटिल बातों को आप गुरुजनों के साथ सम्पर्क स्थापित करने का निमित्त बना सकते हैं। इस प्रकार आपको इस पुस्तक की बातें भी अधिक अच्छी तरह समझ में आएँगी और साथ ही आपके जीवन में उत्तम विद्या का नवीन मार्ग प्रकाशित होगा। इन गुरुजनों में आपके माता, पिता, अध्यापक आदि सभी बड़े लोग सम्मिलित हैं जो आपसे बड़े और अधिक योग्य हैं तथा जिनसे आप कुछ सीख सकते हैं।

(७) छोटों को समझाइए

इस पुस्तक का प्रयोजन इसमें ही पूरा नहीं हो जाता कि आप स्वयं मनन करके, साथियों के साथ विचार करके तथा गुरुजनों से परामर्श करके इस पुस्तक की बातों को भलीभाँति समझ लें। इसके अतिरिक्त इस पुस्तक का एक और भी प्रयोजन है। वह प्रयोजन यह है कि आपको जीवन और शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाले तत्वों की व्यावहारिक यथार्थता विदित हो तथा अधिक से अधिक छात्र इन तत्वों से परिचित होकर इनसे लाभ उठा सकें। इनमें दूसरा प्रयोजन प्रचार द्वारा भी

सम्भव है । किन्तु प्रचार बाहरी साधन है । आधुनिक अध्यापन की भाँति प्रचार भी जीवन और शिक्षा के तत्वों में जीवन्त प्रेरणा का संचार नहीं कर सकता । वह प्रेरणा तो साक्षात् सम्पर्क से ही प्राप्त हो सकती है । आप वह प्रेरणा गुरुजनों के सम्पर्क से प्राप्त कर सकते हैं । किन्तु आपको वह प्रेरणा प्राप्त ही नहीं करनी है, दूसरों को देनी भी है । शिक्षा एक पारस्परिक परम्परा है । इस दान से आपकी विद्या भी तेजस्वी और पूर्ण बनेगी तथा आपके अनुजों का भी उपकार होगा ।

इस पुस्तक का और शिक्षा का प्रयोजन एक ही है । इस पुस्तक को ही आप 'अध्यापन' का निमित्त बना सकते हैं, जिसे हमने पूर्ण शिक्षा का एक महत्वपूर्ण तत्व माना है । इस पुस्तक की बातों को अपने से छोटे छात्रों को समझाइए । इससे आपको इन बातों के सम्बन्ध में कुछ अद्भुत और नवीन रहस्य भी विदित होंगे । देश की शिक्षा का इससे बड़ा उपकार और उद्धार होगा । शिक्षा-सम्बन्धी दुर्बलताओं को जितनी छोटी आयु और जितनी छोटी कक्षा में समझ लिया जाय उतना ही उनका दूर करना अधिक सरल होता है । जितनी देर से दुर्बलताएँ विदित होती हैं, उनका दूर करना उतना ही कठिन होता है । दुर्बलताओं को जल्दी दूर करने से विद्या अधिक सशक्त और तेजस्वी बनती है । श्रेष्ठ और तेजस्वी विद्या को सुलभ बनाने वाले गुणों के संस्कार जितनी जल्दी बालकों के जीवन में उदित होते हैं उतनी ही अधिक समृद्धि के साथ वे पुष्पित और फलित होते हैं । अतः आप इस पुस्तक की बातें अपने से छोटे छात्रों को बताइए । इससे आपकी विद्या भी उज्ज्वल होगी तथा आपके अनुजों का और उनके साथ देश का भविष्य भी उज्ज्वल होगा ।

शारदीय नवरात्र
सम्वत् २०१७ विक्रमी

—'भारतीनन्दन'

विषय संकेत

संबोधन के सात स्वर

मन्त्रमाला

१–छात्रो, उठो ! जागो ! !

छात्रो, उठो ! जागो ! ! आपके महान् देश का गौरवमय अतीत और उज्ज्वल भविष्य आपको पुकार पुकार कर जगा रहा है। अतीत का इतिहास आपको स्मरण दिलाता है कि प्राचीन काल में देश के वीर नवयुवकों ने जीवन और संस्कृति की सभी दिशाओं में कितना उत्साह और पराक्रम दिखाया था। स्वतन्त्र भारत के नवनिर्माण के स्वप्न आपके समर्थ उद्योग को आमन्त्रित कर रहे हैं। हमारा देश सदियों की दासता के बाद स्वतन्त्र हुआ है। जब तक हम परतन्त्र बने रहे, इस बीच में दूसरे देश उन्नति के मार्ग बहुत आगे बढ़ गये। हमारा अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है। किन्तु वर्तमान में हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में संसार के महान् देशों से बहुत पीछे हैं। विज्ञान, साहित्य, दर्शन, उद्योग, खेल आदि किसी भी दिशा में अन्तरराष्ट्रीय क्षेत्र में भारत का कोई स्थान नहीं है। केवल अतीत के गौरव से वर्तमान हीनता का परिशोधन नहीं किया जा सकता। भविष्य में वेगपूर्वक सभी दिशाओं में उन्नति करने पर ही संसार के देशों में भारत का गौरवपूर्ण स्थान बन सकता है।

भविष्य में देश की उन्नति आप पर ही निर्भर है। बालक और वृद्ध तो असमर्थ होते हैं। बालक तो कोमल और क्रीड़ा-प्रिय होते हैं। खेल ही उनका जीवन है, यद्यपि उन्नति के अंकुर उनके कोमल जीवन में उगाए जा सकते हैं। वृद्ध शासन कर सकते हैं, किन्तु निर्माण का भार युवकों पर ही रहेगा। यौवन में ही श्रम और निर्माण की शक्ति होती है। यौवन की अदम्य शक्ति पर ही देश की आशा निर्भर है। स्वतंत्र भारत के भविष्य की उज्ज्वल सम्भावनाएँ आपकी शक्ति और आपके

साहस को चुनौती दे रही हैं। देश निर्माण का यह कार्य कोरा परोपकार अथवा देश-सेवा नहीं है। देश निर्माण के क्षेत्रों में ही प्रत्येक नवयुवक का स्थान होगा। यही निर्माण का कार्य उसकी जीविका होगा। यही उसके जीवन निर्वाह का साधन होगा। अतः यह देश निर्माण जहाँ एक ओर सेवा तथा परोपकार है, वहाँ दूसरी ओर इसमें प्रत्येक युवक का अपना हित भी है। देश के भविष्य और अपने हित दोनों को देखकर आप शक्ति की साधना कीजिये। उत्तम शिक्षा के द्वारा योग्य बनकर अपने जीवन को सफल और देश के भविष्य को गौरवमय बनाइये। उठो, जागो ! उत्तर में हिमालय पर शिव का धनुप-टंकार आपका आह्वान कर रहा है—दक्षिण में सागर की लहरें आपके बाहुबल को चुनौती दे रही हैं। पूर्व में उदय होकर सूर्य आपकी प्रगति का पथ आलोकित करता है—पश्चिम से आने वाली आँधियाँ आपके साहस को ललकार रही हैं। चन्द्रलोक के यात्री आपकी प्रतिभा को जगा रहे हैं। उठो, जागो ! साधना, श्रम, उत्साह, साहस और प्रतिभा से देश के भविष्य में योग देकर अपने यौवन को धन्य बनाओ।

२–क्या आप सोचते हैं ?

आप छात्र हैं ! कौन सी कक्षा में पढ़ते हैं ? कौन सी परीक्षा पास की है ? उस परीक्षा में आपका फल कैसा रहा ? किस श्रेणी में पास हुए ? ये सब प्रश्न हम आपसे करते हैं। इसलिये कि हम आपकी हालत जानना चाहते हैं। किन्तु सचमुच ये प्रश्न ऐसे हैं जो आपको अपने आप से करने चाहियें। आप छात्र हैं और पढ़ते हैं, तो आपको अपनी पढ़ाई और परीक्षा के बारे में कुछ सोच विचार भी करना चाहिये। यदि आपका परीक्षाफल बहुत अच्छा रहता है और आपने पिछली परीक्षाऐं उत्तम श्रेणी में पास की हैं तो यह आपके लिये और देश के लिये बड़े गौरवकी बात है। किन्तु यदि आपका परीक्षाफल अच्छा नहीं रहता है और आप

अच्छी श्रेणी में पास नहीं हुए हैं तो आपको सोचना चाहिये कि आपकी पढ़ाई में क्या दोष है। आपको पढ़ाई में सुधार और परीक्षा में उन्नति करने का प्रयत्न करना चाहिये।

छात्र होने के साथ साथ आप युवक भी हैं। युवावस्था जीवन का निर्माण-काल है। इस अवस्था में जीवन का मार्ग और लक्ष्य बनाया जाता है। शिक्षा जीवन की उन्नति का साधन है। शिक्षा द्वारा आपको जीवन के उत्तम लक्ष्यों का ज्ञान होता है। उद्योग के द्वारा आप उस लक्ष्य तक पहुँचने का मार्ग बना सकते हैं। जीवन की सफलता के लिये शिक्षा के साथ साथ स्वास्थ्य और चरित्र की भी आवश्यकता है। इनकी शक्ति से ही उत्तम लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। यौवन और अध्ययन का समय निकल जाने के बाद जीवन को उन्नत बनाने का अवसर नहीं मिलता। क्या आप कभी सोचते हैं कि उत्तम जीवन का क्या रूप है ? जीवन के उत्तम लक्ष्य क्या हैं ? शिक्षा से उनका क्या सम्बन्ध है ? क्या आप जीवन और शिक्षा में उन्नति का प्रयत्न कर रहे हैं ? यदि नहीं तो आप उस मनुष्य के समान हैं जो जीवन के प्रभात काल में भी सो रहा है। नव यौवन का सूर्य जीवन के क्षितिज पर उदित होकर आपको जागरण का सन्देश दे रहा है। उठो ! जागो !! और उन्नति के मार्ग का अनुसन्धान कर उस पर आगे बढ़ो। जीवन की पूर्णता और सफलता की मंजिल आपको निमन्त्रण दे रही है।

३—भविष्य के नेता

आपके विद्यालय में आने वाले नेता और मन्त्री अपने भाषणों में प्रायः आपसे कहते हैं कि 'आप भविष्य के नेता हैं'। भविष्य में आप लोग ही मन्त्री और नेता बनेंगे। देश की बागडोर आपके ही हाथ में होगी। उनका यह कथन बिल्कुल सत्य है। वृद्ध नेता स्वर्ग की राह पर बढ़ते जाते हैं और भविष्य के नेता वर्तमान के नवयुवकों में से ही

बनते हैं। किन्तु नेता और मन्त्री कोई एकदम नहीं बन जाता। नेता बनने के लिये कुछ योग्यता, सेवा, साधना, कुशलता, सामर्थ्य आदि की अपेक्षा है। फिर सब लोग नेता और मन्त्री नहीं बनते। गिने चुने लोग ही ऊँचे पदों पर पहुँच पाते हैं। निःसन्देह आप भविष्य के नेता हैं आप लोगों में से ही भविष्य के मन्त्री और नेता बनेंगे? यह सुनकर आप लोगों में कुछ क्षणभर झूठे गर्व का अनुभव करते हैं और कुछ अपनी अयोग्यता देखकर निराश होते हैं।

किन्तु झूठा गर्व और निराशा दोनों ही आपकी सच्ची उन्नति में बाधक हैं। झूठा गर्व एक भ्रम है जो जीवन में असफलताओं का कारण बनता है। निराशा भी उत्साह को मन्द करके सफलता में बाधक होती है। आशावादी दृष्टि से जीवन में उत्साह रहता है। किन्तु आशा का आधार अपनी योग्यता का यथार्थ ज्ञान होना चाहिये। योग्यता को बढ़ाने से आशा और उत्साह बढते हैं। आपका भविष्य योग्यता के अनुसार बढ़ेगा। अपनी वर्तमान स्थिति को परखिये और अपनी योग्यता को बढ़ाइये। शिक्षा में अच्छी सफलता प्राप्त करने पर ही आपका भविष्य उज्ज्वल होगा। आप में से कुछ लोग नेता और मन्त्री बन सकेंगे। जीवन में सफलता और उन्नति तो सभी प्राप्त कर सकेंगे। आप भविष्य में क्या बनेंगे यह सब इस पर निर्भर है कि भविष्य के निर्माण के लिये आप वर्तमान में क्या साधना और श्रम कर रहे हैं। वर्तमान का उद्योग ही भविष्य का निर्माता है।

४—आज आप छात्र हैं

आप भविष्य के नेता हैं, किन्तु आज आप छात्र हैं। भविष्य में आप समाज में ऊँचे से ऊँचा पद प्राप्त कर सकते हैं। यह आपके जीवन की अनिश्चित सम्भावना है। यह सम्भावना आपके वर्तमान

उद्योग से निश्चित और सफल बन सकती है। वर्तमान ही भविष्य का विधाता है। भविष्य में आप क्या बनेंगे। यह इस बात पर निर्भर है कि वर्तमान में आप क्या तैयारी और उद्योग कर रहे हैं। आज आप छात्र हैं। विद्या प्राप्त करने के लिये आप किसी विद्यालय में प्रविष्ट हुये हैं। इस विद्या में आपकी कितनी लगन है ? विद्या में विकास के लिये आप कितना उद्योग और परिश्रम कर रहे हैं ? इस विद्या में आपको कितनी सफलता मिल रही है ? आज के छात्र-जीवन में समय और अवसर का कैसा उपयोग कर रहे हैं ? क्या आपको सदा इस बात का ध्यान रहता है कि यह आपके जीवन का निर्माण काल है ? यही समय है जबकि आप भविष्य में जो बनना चाहते हैं उसकी तैयारी कर सकते हैं; जो फल खाना चाहते हैं उनके वृक्ष आरोपित कर सकते हैं।

वर्तमान का भविष्य से और भविष्य का वर्तमान से सम्बन्ध है। भविष्य की कल्पना करनी चाहिये। किन्तु केवल कल्पना से भविष्य नहीं बनेगा। वर्तमान की साधना से भविष्य बनता है। आज के छात्र-जीवन में भविष्य के जो बीज आप बोयेंगे, जो वृक्ष आरोपित करेंगे, वे ही आपके जीवन में फलें फूलेंगे। जीवन में उत्तम लक्ष्य बनाना चाहिये और उस लक्ष्य की साधना करनी चाहिये। यह साधना वर्तमान का उद्योग है। इसी उद्योग से लक्ष्य पूरे होते हैं। आपको एक दृष्टि भविष्य के लक्ष्य पर रखनी चाहिये। किन्तु दूसरी दृष्टि वर्तमान के कर्त्तव्य और उद्योग पर भी रखनी चाहिये। आज के ही छात्र भविष्य के नेता और मन्त्री बनेंगे। आज के ही छात्र भविष्य में बड़े बड़े पदों पर होंगे। किन्तु यह तभी होगा जबकि वे छात्र जीवन में अपने छात्र धर्म का अच्छी तरह पालन करेंगे। भविष्य के स्वप्नों में लीन रहना भ्रान्ति है। इस भ्रान्ति से निराशा ही मिलेगी। भविष्य का ध्यान रखकर, वर्तमान में उत्तम विद्या और योग्यता प्राप्त कर आप

उन्नति के स्वप्नों को सत्य बना सकेंगे। आज आप छात्र हैं। एक छात्र की हैसियत से आप अपनी विद्या की कैसी साधना कर रहे हैं। शील-शिष्टाचार का कैसा पालन कर रहे हैं। युवक की हैसियत से आप क्या क्या गुण उपार्जित कर रहे हैं; जिनसे आपका व्यक्तित्व सम्पन्न बनेगा और आप एक समर्थ पुरुष बनेंगे। वर्तमान छात्र जीवन के सदुपयोग पर ही आपका उज्ज्वल भविष्य निर्भर है।

५–उठो ! उद्योग करो

जीवन को सफल और उन्नत बनाने के लिये सबसे पहले आपको सक्रिय बनना है। सक्रिय का अर्थ है क्रियाशील होना। कर्म में आपकी स्वाभाविक रुचि और लगन है तो आप सक्रिय हैं। कर्म में संलग्न होने के लिए अपनी ओर से चेष्टा अथवा प्रयत्न आरम्भ करना उद्योग है। उद्योगी पुरुष को ही लक्ष्मी अर्थात् समृद्धि और सफलता प्राप्त होती है। उद्योग सफलता के दिवस का अरुणोदय है। इसी से आपका जागरण और जीवन का उत्थान आरम्भ होगा। अपने जीवन की उन्नति के लिये आपको स्वयं ही उद्योग करना होगा। अपने ही उद्योग से आपका जीवन सफल बनेगा। किसी दूसरे का उद्योग आपके काम नहीं आ सकता। दूसरों से आप आवश्यक सहायता ले सकते हैं। किन्तु अपनी सफलता के लिये मुख्य प्रयत्न आपको ही करना होगा। उद्योग करने के लिये आपको शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार का आलस्य छोड़ना होगा। आलस्य मनुष्य का प्रबल शत्रु है और जीवन की असफलता का एक प्रमुख कारण है। अतः आप आलस्य त्याग कर उद्योगी बनें। जीवन की उन्नति के लिये जो करना है, उसे उत्साह पूर्वक आरम्भ करने में विलम्ब न करें। कार्य को आरम्भ करने के बाद उसे करने में तत्पर रहें। आरम्भ शूर अन्ततः सफलता प्राप्त नहीं करते। जो लोग कार्य को आरंभ

करने में तो बहुत ज़ोर शोर दिखाते हैं किन्तु आगे चल कर उसे उद्योग पूर्वक नहीं करते प्रायः उनका कार्य कभी पूरा होते नहीं देखा है। उत्साह उद्योग की सचाई का लक्षण है। यदि आप जीवन में सफलता और उन्नति चाहते हैं, तो उत्साह पूर्वक तथा आलस्य छोड़कर उद्योग में लग (रत) जाइये।

६—जागो ! सचेत बनो

उठो, जागो और जीवन की उन्नति के लिये स्वतन्त्र निश्चय पूर्वक उद्योग करो। जागरण का अर्थ सचेत होना है। चेतना ज्ञान की शक्ति है। सचेतनता का अभिप्राय ज्ञान के प्रकाश का विस्तार है। चेतना अथवा ज्ञान के द्वारा ही आपके उद्योग सफल होंगे। जागरण के लिये आँख खोलना आवश्यक है। बिना आँखें खोले उठ जाने पर भी आप कहीं चल नहीं सकते। यदि बिना आँखें खोले ही चल देंगे तो रास्ते में ठोकर खाकर गिर जायेंगे। अतः असफलता के मार्ग पर चलने के लिए आपको उठना ही नहीं, जागना भी आवश्यक है। जीवन की उषा पूर्व दिशा में आपके लिये सफलता का अपूर्व मार्ग खोल रही है। मन की आँखें खोलकर सजग और सचेत बनिए। आलस्य छोड़ कर जीवन निर्माण के उद्योग में तत्पर हो जाइए। किन्तु साथ ही चेतना को विकसित करने का प्रयत्न भी कीजिये। चेतना और ज्ञान से ही आपके उद्योग सफल होंगे। आप छात्र हैं, विद्या के साधक हैं। अतः चेतना ही आपकी विभूति है। ज्ञान ही आपकी सम्पत्ति है। आपकी चेतना प्रबुद्ध हो, आपके ज्ञान की ज्योति तीव्र हो, प्रभात के सूर्य की भाँति उसका आलोक बढ़ता जाए। उसकी गति भी सूर्य की भाँति ऊर्ध्वमुखी हो। आप सफलता के मार्ग पर चलने के लिये उद्योगशील हों, साथ ही सफलता के मार्ग को, सफलता के साधनों को,

अपने हित को समझने के लिये अपनी चेतना को भी जागरित करें, तभी आपके उद्योग सफल होंगे।

७—स्वतन्त्र बनो

सफलता के उद्योग के लिये आपको सक्रिय बनने के साथ साथ स्वतन्त्र भी बनना होगा। स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि हम जो चाहें करें। यह उच्छृङ्खलता है जो अराजकता फैलाती है। स्वतन्त्रता का अर्थ है कि हमें जो कुछ करना उचित है वह हम स्वयं अपनी इच्छा से करें। उसके लिए दूसरे के आदेश निर्देश की प्रतीक्षा न करें। पराधीनता दुर्बलता है। यदि हम किसी भी कार्य के लिये दूसरे का अवलम्ब खोजते हैं तो इसका अर्थ यही है कि हम में उस कार्य के करने योग्य सचेष्टता और शक्ति नहीं है। स्वतन्त्रता में ही उद्योग की मौलिक शक्ति प्रकट होती है। स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं कि हम दूसरों से शिक्षा, ज्ञान, सहयोग अथवा सहायता ग्रहण न करें। दूसरों से हमें बहुत कुछ सीखना और लेना है। किन्तु उस सब में हमारी अपनी इच्छा ही हमारी रुचि का आधार रहे। हम अपनी स्वतन्त्र इच्छा से दूसरों से शिक्षा, ज्ञान और सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करें, तभी हम इन्हें प्राप्त कर सकेंगे और इनसे लाभ उठा सकेंगे। बिना हमारी स्वतन्त्र, सजग, सचेष्ट और तीव्र इच्छा के दूसरों से मिलन वाली शिक्षा भी निष्फल होगी। इच्छा का अर्थ कामना नहीं है। इच्छा का अर्थ कर्म करने का भावपूर्ण निश्चय है। हम अपनी स्वतन्त्र बुद्धि से कार्य-अकार्य का निर्णय करें तथा स्वयं ही उस निर्णय को कार्यान्वित करने का निश्चय करें। इस निश्चय में हमारी बुद्धि का प्रकाश होने के साथ साथ हमारे हृदय की भावना और आत्मा की शक्ति भी हो, तभी यह निश्चय कार्यान्वित हो सकेगा। निश्चय और उद्योग की

स्वतन्त्रता मनुष्य की मूलशक्ति और सफलता की पहली सीढ़ी है। अतः स्वतन्त्र इच्छा और उद्योग से सफलता एवं उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ो।

८—अपना उद्धार स्वयं करो

गीता का यह उपदेश है कि अपना उद्धार स्वयं करो। आपके जीवन की उन्नति आपके ही उद्योग से होगी। दूसरों के प्रयत्न आपकी बाहरी सहायता कर सकते हैं किन्तु जिस शिक्षा के द्वारा आपके जीवन की उन्नति होगी वह आप स्वयं अपने प्रयत्न से ही प्राप्त कर सकते हैं। सरकार शिक्षा के लिये विद्यालय खोल सकती है। आपके माता पिता आपकी शिक्षा के लिये खर्च भेज सकते हैं। वे आपकी शिक्षा की बाहरी देख-भाल कर सकते हैं। किन्तु वे आपके स्थान पर पढ़ नहीं सकते। उनके पढ़ने से आपको लाभ नहीं हो सकता। पढ़ना, समझना, याद करना अपना ही आपके काम आ सकता है, किसी दूसरे का आपके काम नहीं आ सकता।

अतः विद्या के लिये आपको ही उद्योग करना होगा। गीता का यह वचन आपके जीवन का उत्साह मन्त्र है कि 'अपना उद्धार स्वयं करो और अपने को नीचा अथवा निराश मत बनाओ'। कमज़ोरी के कारण ऐसा मत सोचिए कि आप जीवन में ऊँचा पद प्राप्त नहीं कर सकते। उचित उद्योग से आप जीवन में ऊँचा पद प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु यह उद्योग आपको स्वयं ही करना होगा। आपके उद्योग ही आपके काम आयेगा। केवल कामना और कल्पना से उन्नति नहीं हो सकती। अभी आपके जीवन-निर्वाह और आपकी शिक्षा के बाहरी प्रबन्ध में आपके माता पिता आपकी सहायता करते हैं। किन्तु यह सहायता भी आपको अधिक दिन तक नहीं मिलेगी। थोड़े दिन बाद

आपको जीवन में प्रवेश कर स्वावलम्बी बनना होगा। आपका पारव होगा। उसका पालन आपको ही करना होगा, जैसे आपके मा पिता आपका करते हैं। उसके लिये आपको स्वयं ही परिश्रम कर होगा। कोई दूसरा आपकी सहायता नहीं करेगा। उस समय तैयारी आप अभी से करेंगे तो आपको समय पर निराश और दुः न होना पड़ेगा। अपने जीवन और भविष्य के निर्माण के लिये स्वयं उद्योग कीजिये।

९—आपका भविष्य

आपका भविष्य आपके अपने उद्योग पर निर्भर है। भविष्य आप वही बनेंगे जो बनने की आप परिश्रम और लगन से तैयारी क रहे हैं। आप भविष्य में ऊँचा पद प्राप्त कर सकते हैं। नेता, मं अथवा उच्च अधिकारी बन सकते हैं। किन्तु यह नेताओं द्वारा भाषण में दिये जाने वाले आशीर्वादों से सम्भव नहीं हो सकता। भाषण के आशीर्वाद केवल यह संकेत करते हैं कि भविष्य के नेता, मंत्री औ उच्च अधिकारी बनने वाले नवयुवक ही होंगे। वे थोड़े से नवयुव कौन होंगे यह उन नवयुवकों के उस उद्योग पर निर्भर होगा जो आज कर रहे हैं। कामना या कल्पना से नहीं वरन् उद्योग से जीवन क निर्माण होता है। कल्पना एक लक्ष्य को हमारे सामने स्पष्ट करत है। कामना से उस लक्ष्य को प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती है किन्तु उद्योग से ही वह लक्ष्य प्राप्त होता है। उद्योग को उत्साहित करने में कल्पना की दृष्टि और कामना की प्रेरणा सहायक अवश्य होती है।

मनुष्य जीवन में जो कुछ होता है वह प्रकृति की भाँति अपने आप नहीं होता वरन् मनुष्य के प्रयत्न से ही होता है। प्रकृति में वर्षा

अपने आप होती है। जंगल में वृक्ष अपने आप उगते और बढ़ते हैं। किन्तु मनुष्य जीवन में शिक्षा, सभ्यता, उन्नति आदि के नाम से जो कुछ होता है वह मनुष्य के प्रयत्न से ही होता है। अपने आप नहीं होता। आपके जीवन में बहुत कुछ आपके माता-पिता आदि के प्रयत्न से हुआ है। किन्तु, शिक्षा, विद्या, चरित्र आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो उनके प्रयत्न से भी नहीं हो सकती। वे इनका बाहरी प्रबन्ध कर सकते हैं। किन्तु शिक्षा, ज्ञान और चरित्र प्राप्त करने के लिए आपको स्वयं उद्योग करना होगा। आपके प्रयत्न से आपकी शिक्षा अच्छी हो सकती है। कोई दूसरा आपके स्थान पर पढ़ नहीं सकता। आपके वर्तमान उद्योग द्वारा ही आपका भविष्य बनेगा। अतः छात्र-जीवन का सदुपयोग भविष्य के निर्माण में कीजिये।

१०—शिक्षा और जीवन

मनुष्य का जीवन पशुओं से भिन्न है। पशु केवल भोजन पर जीता है। किन्तु मनुष्य केवल रोटी से नहीं जीता। मनुष्य में चेतना का अधिक विकास हुआ है। इस चेतना की आकांक्षाएँ ऊँची हैं। रोटी शरीर की आकांक्षा है। शिक्षा, सभ्यता, साहित्य, संस्कृति आदि चेतना की आकांक्षाएँ हैं। इनसे ही मनुष्य की चेतना विकसित और सन्तुष्ट होती है। चेतना की प्रेरणा से और चेतना की प्रसन्नता के लिये ही मनुष्य युगों से शिक्षा, सभ्यता, संस्कृति, साहित्य आदि की साधना करता आया है। इनमें मनुष्य का जीवन पूर्ण होता है। इस पूर्णता में उसे आनन्द मिलता है।

सभ्यता, संस्कृति, साहित्य आदि मनुष्य के जीवन के साध्य हैं। वे लक्ष्य हैं जिनको मनुष्य प्राप्त करना चाहता है। शिक्षा इनको प्राप्त करने का साधन अथवा मार्ग है। शिक्षा के द्वारा ही ये प्राप्त होते हैं। वस्तुतः शिक्षा इनकी साधना की प्रणाली है। शिक्षा मनुष्य की चेतना का विकास

है। यह विकास ज्ञान के विस्तार, सभ्यता के संस्कार, संस्कृति के सौन्दर्य और साहित्य के आनन्द में फलित होता है। शिक्षा से ही मनुष्य का जीवन उन्नत होता है और विकास के इन क्षितिजों का स्पर्श करता है। दूसरे देश शिक्षा के द्वारा ही उन्नति कर रहे हैं। हमारे देश का उत्थान भी शिक्षा के द्वारा ही होगा। आपके व्यक्तिगत जीवन की उन्नति भी शिक्षा के द्वारा ही होगी। शिक्षा जीवन की उन्नति का साधन है। अच्छी शिक्षा प्राप्त करके ही आप जीवन में ऊँचे पद प्राप्त कर सकेंगे। अतः छात्र-जीवन में उत्तम शिक्षा और श्रेष्ठ सफलता प्राप्त कर जीवन की उन्नति का मार्ग बनाइये।

११–शिक्षा की दशा

शिक्षा जीवन की उन्नति का साधन है। व्यक्तित्व और बुद्धि का विकास इस शिक्षा का लक्ष्य है। शिक्षा की प्राप्ति में युवकों के जीवन का स्वर्णिम और सर्वोत्तम काल व्यतीत होता है। पांच वर्ष से पच्चीस वर्ष तक का लम्बा और महत्वपूर्ण समय शिक्षा प्राप्त करने में ही चला जाता है। यह लम्बा समय जीवन का एक बड़ा भाग है। साथ ही यह जीवन का सुन्दर और स्वर्णिम काल है। इस लम्बे समय में शिक्षा प्राप्त करने के अतिरिक्त घर का और कोई काम बहुत कम युवक करते हैं। माता-पिता और सरकारी विभाग शिक्षा पर बहुत धन व्यय करते हैं। शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र भी इसमें अपना समय और श्रम लगाते हैं। इतने पर भी शिक्षा की क्या दशा है? परीक्षाफल देखिये तो प्रतिवर्ष गिरता जा रहा है। आपको विश्वास न हो किन्तु यह बिल्कुल सत्य है कि कई कॉलिजों में विश्वविद्यालयों की कुछ परीक्षाओं का फल ०% अर्थात् शून्य है। पूरी कक्षाओं में एक भी विद्यार्थी पास नहीं हुआ। दूसरे कॉलिजों का परीक्षाफल शून्य न हो किन्तु प्रतिशत के

हिसाब से बहुत कम है। आप अपने कॉलिज की कक्षाओं का परीक्षा फल मालूम कीजिये। परीक्षा-फल की वास्तविक स्थिति का अनुमान केवल प्रतिशत से नहीं लगाया जा सकता। जो लोग पास होते हैं उनकी श्रेणी (डिवीजन) भी देखिये। प्रथम और द्वितीय श्रेणी में बहुत कम लोग पास होते हैं। द्वितीय श्रेणी ही आज प्रथम श्रेणी के समान कठिन हो गयी है।

दूसरों को जानें दीजिए। आप स्वयं अपनी शिक्षा की स्थिति को ही देखिये। आप पिछली परीक्षाएँ किस श्रेणी में पास करते रहे हैं। अपने परीक्षाफल से ही शिक्षा की वर्तमान दशा का पता लगाइये। फिर परीक्षा-फल और श्रेणी ही शिक्षा का सर्वस्व नहीं है। परीक्षा में योग्यता की सच्ची और पूरी परख नहीं होती। लोग रट कर भी पास हो जाते हैं। शिक्षा का अर्थ विद्या और ज्ञान है। यह ज्ञान गुरू और ग्रन्थों के द्वारा प्राप्त होता है। भाषा इस ज्ञान का माध्यम है। साहित्य गणित, इतिहास, दर्शन, अर्थशास्त्र आदि विषय ज्ञान की शखाएँ हैं। आपको इन विषयों का कितना वास्तविक और गम्भीर ज्ञान है। आपकी भाषा कितनी शुद्ध, समर्थ और सुन्दर है। ग्रन्थों को पढ़ने और समझने की आप में कितनी शक्ति है। इस सवका विचार करके आप यह अनुमान लगा लीजिये कि शिक्षा की क्या स्थिति है। परीक्षाओं और अध्यापकों का कहना है कि आज के अधिकांश छात्र एक वाक्य भी सही नहीं लिख सकते। किसी भी पुस्तक को समझने की सामर्थ्य नहीं रखते। यदि शिक्षा की ऐसी दशा है तो यह कितनी शोचनीय वात है कि युवक छात्रों का बीस वर्ष का स्वर्णिम काल इस प्रकार निष्फल और नष्ट होता है।

१२–उपचार के उपाय

शिक्षा की इस शोचनीय दशा से राज्यों की सरकारें तथा देश के नेता चिन्तित हैं। प्रतिवर्ष राज्यों के शिक्षामन्त्रियों और विश्वविद्यालय

के कुलपतियों के सम्मेलन होते हैं। वे शिक्षा की गिरती हुई दशा के बारे में विचार करते हैं। देश के नेता अपने भाषणों में शिक्षा की दुर्दशा पर आँसू बहाते हैं। अध्यापक और अभिभावक छात्रों की दीन दशा पर खेद प्रकट करते हैं। शिक्षा की दुर्दशा आज इतनी स्पष्ट हो चली है कि सभी इसके बारे में चिंतित हैं। शिक्षा की इस दुर्दशा के कारणों पर भी विचार किया जाता है। कोई अध्यापकों को दोष देते हैं, तो कोई राजनीति को। नेताओं का कथन है कि अध्यापकों ने अपना नैतिक नेतृत्व खो दिया। छात्रों पर उनका प्रभाव नहीं है। छात्रों से उनका सम्पर्क भी नहीं है। अध्यापक कहते हैं कि उनका वेतन कम है और समाज में उनका आदर नहीं है। सरकार शिक्षा की दशा को सुधारने का प्रयत्न कर रही है। अध्यापकों के वेतन बढ़ाए जा रहे हैं। शिक्षा और परीक्षा की प्रणालियों को सुधारने के उपाय भी सोचे जा रहे हैं। शिक्षा के विस्तार पर लाखों रुपया व्यय किया जा रहा है।

किन्तु इन सबसे शिक्षा की दशा में कोई सुधार नहीं हो रहा है, न परीक्षाफल ही अच्छे हो रहे हैं और न छात्रों की बुद्धि एवं उनकी योग्यता बढ़ रही है। इसका कारण यह है कि शिक्षा की उन्नति के ये सब उपाय बाहरी हैं। इमारतों और पुस्तकों से शिक्षा नहीं हो सकती। प्राचीनकाल में वनों में और वृक्षों के नीचे वह विद्या फली-फूली थी, जिसका आज पढ़ना-समझना भी कठिन है। परीक्षा और शिक्षा की प्रणाली के सुधार भी बाहरी हैं। अध्यापकों के वेतन बढ़ने से अध्यापकों की कठिनाइयाँ दूर हो सकती हैं, किन्तु केवल वेतन बढ़ने से अध्यापकों में पढ़ाने का उत्साह नहीं बढ़ सकता। सरकार, शिक्षामन्त्री, शिक्षा अधिकारी, अभिभावकों की चिन्ताएँ भी बाहरी हैं। ये सब शिक्षा का प्रबन्ध ही तो कर सकते हैं, किन्तु छात्रों के स्थान पर ये पढ़ तो नहीं सकते। इनके पढ़ने से छात्रों का ज्ञान नहीं बढ़ेगा। शिक्षा के साथ सबसे निकट सम्बन्ध छात्रों का है। आश्चर्य की बात है कि सब

लोग शिक्षा की दुर्दशा के बारे में चिन्तित हैं। किन्तु स्वयं छात्र जिन्हें शिक्षा प्राप्त करनी है और शिक्षा की दुर्दशा में जिनकी सबसे अधिक हानि है, इसके बारे में सबसे अधिक निश्चिन्त हैं। 'मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। शिक्षा के प्रबन्ध का कार्य दूसरों का है किन्तु पढ़ने का काम छात्रों का ही है। विद्या प्राप्त करने में छात्रों के सचेष्ट होने पर ही उनका उद्धार होगा। उन्हें अपना उद्धार स्वयं करना होगा।

१३—अपने दीपक स्वयं बनो

भगवान बुद्ध ने कहा है कि 'अपने दीपक स्वयं बनो।' अपने जीवन की उन्नति और सफलता के लिए दूसरों के विचार और प्रयत्न पर अवलम्बित न रहो। दूसरों के विचारों से प्रकाश मिलता है। दूसरों के प्रयत्न से सहायता मिलती है। किन्तु यह सब बाहरी है। आपका उद्धार अपने प्रकाश से ही होगा। आपकी उन्नति अपने प्रयत्न से ही होगी। दूसरों के विचारों से ज्ञान ग्रहण कीजिये। आवश्यक होने पर दूसरों से सहायता लीजिये। किन्तु अपनी बुद्धि से उन विचारों के सत्य-असत्य का निर्णय कीजिये। दूसरों के विचार एक खुले हुए ग्रन्थ के समान हैं। दीपक के प्रकाश में ही आप उस ग्रन्थ को पढ़ सकते हैं। अपनी चेतना का दीपक जगाइये और उसके प्रकाश में ज्ञान के रत्नों को परखिये।

आपके जीवन का मूल्य सबसे अधिक आपके लिये है। आपसे अधिक महत्त्व इसे कौन दे सकता है ? आप स्वयं अपनी चेतना को सजग कर अपने जीवन का महत्त्व पहचानिये। अपने जीवन को उन्नति के मार्ग पर बढ़ाने के लिए स्वयं उद्योग कीजिये। सरकार और माता-पिता के प्रयत्नों से आपको बाहरी सहायता मिलेगी। वे केवल मार्ग बना सकते

हैं। किन्तु उस मार्ग पर आपको स्वयं ही चलना होगा। वह मार्ग भी पूरा नहीं बना सकते। आगे का मार्ग भी आपको ही बनाना होगा। गुरुजन आपको अपनी चेतना के प्रकाश से मार्ग दिखा सकते हैं, किन्तु उस मार्ग पर आपको अपनी ही आत्मा का दीपक लेकर चलना होगा। जीवन का उद्देश्य और मूल्य क्या है ? शिक्षा का प्रयोजन क्या है ? उत्तम शिक्षा क्या है ? आपकी शिक्षा में क्या दोष हैं ? इन प्रश्नों पर आपको स्वयं अपनी ओर से विचार करना चाहिये। अपने विचार से इनका समाधान कर अपनी उन्नति और सफलता का मार्ग बनाइये।

१४–जीवन उन्नति का आनन्द है

किन पुण्यों से यह मनुष्य जीवन आपको मिला है, जो सब जीवों में श्रेष्ठ है। इस दुर्लभ मनुष्य जीवन को उन्नति के द्वारा सफल बनाइये। उत्तम सुख भी उन्नति के द्वारा ही मिल सकता है। मनुष्य जीवन के आनन्द का रहस्य उन्नति में ही है। वस्तुतः उन्नति जीवन का स्वरूप है। वृक्ष भी जीव है। वे भी जब बढ़ते हैं, तभी फूलते फलते हैं। तभी उन पर फूल खिलते हैं और फल फलते हैं। मनुष्य जीवन भी उन्नति होने पर ही फलता फूलता है। लक्ष्य जीवन का फल है। प्रसन्नता अथवा आनन्द उसका फूल है। जीवन में उत्तम लक्ष्य बनाइये और उनकी साधना कीजिये। तभी जीवन सफल होगा। आनन्द के पुष्पों से जीवन के उद्यान को सुरभित बनाइये।

उन्नति में ही आनन्द का रहस्य भी निहित है। अतः उन्नति की साधना से आनन्द भी प्राप्त होगा। धन, यश, गौरव आदि सब उन्नति के ही फल हैं। वे उन्नति से ही प्राप्त होते हैं। जीवन की उन्नति के लिए आपको उद्योग करना होगा। शरीर की उन्नति भोजन से अपने आप होती है। किन्तु जीवन की उन्नति प्रयत्न से ही होती है, अपने आप

नहीं होती। यह उन्नति ही जीवन का मर्म है। जीवन उस काल की अवधि का नाम है, जिसके अन्तर्गत मनुष्य का अस्तित्व रहता है। काल का स्वरूप भी उन्नति है। समय सदा आगे बढ़ता रहता है। अतः उन्नति करते रहने पर ही आप काल अथवा जीवन को सार्थक बनाते हैं। उन्नति को लक्ष्य बनाकर जीवन को सफल बनाइए। जीवन अनेक शाखाओं के वृक्ष के समान है। जीवन की उन्नति सभी दिशाओं में होनी चाहिए। स्वास्थ्य, विद्या, चरित्र और कीर्ति जीवन की चार मुख्य दिशाएँ हैं। स्वास्थ्य शारीरिक उन्नति है, इसकी एक सीमा है। किन्तु विद्या अनन्त है, क्योंकि विद्या शरीर का नहीं चेतना का धर्म है और चेतना अनन्त है। अतः विद्या में आप सदा उन्नति कर सकते हैं। नए नए ज्ञान के प्रवाह नित्य आते रहते हैं, तो विद्या की चेतन-धारा सदा नवीन और आनन्दमय रहती है। नित्य नए गुण सीखने से अथवा नए गुणों के मार्ग पर कुछ आगे चरण बढ़ाने से चरित्र की उन्नति होती है। विद्या और चरित्र की उन्नति से कीर्ति भी बढ़ती है। नित्य प्रातःकाल विचार कीजिए कि आप किन दिशाओं में क्या उन्नति कर रहे हैं और उत्साहपूर्वक उन्नति के मार्ग में आगे चरण बढ़ाइए।

१५—जीवन का लक्ष्य बनाइये

जीवन को सफल बनाने के लिए आप अपने जीवन का लक्ष्य बनाइए। लक्ष्य जीवन की गति को सही दिशा देता है। लक्ष्य-युक्त जीवन के उद्योग सार्थक होते हैं। बिना लक्ष्य का जीवन निरर्थक काल-यापन बन जाता है। जीवन तो गतिशील है। काल की गति के साथ वह तो चलता जाता है। यदि बीतने वाले समय का उचित उपयोग नहीं हो तो वह व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है। यों समझिए कि

उतने समय का जीवन में कोई मूल्य ही नहीं है अथवा उतना समय ही आयु में से कम हो जाता है। समय का निष्फल जाना जीवन और आयु में मूल्य को कम करता है। अतः जीवन को सफल बनाने के लिए जीवन का लक्ष्य बनाइए। लक्ष्य जीवन का प्रयोजन अथवा फल है। हम जो कुछ भी करते हैं उसका कोई हितकर परिणाम होना चाहिये। जो समय बीतता है उसमें कोई जीवन का लाभ होना चाहिये। जीवन का हित और लाभ उन गुणों में है जो जीवन की उन्नति में सहायक होते हैं।

जीवन के लक्ष्य अनेक हैं, एक नहीं। जीवन जटिल है और अनेक लक्ष्यों में ही पूर्ण होता है। जो वस्तु अथवा गुण जीवन के लिये हितकारक है और जीवन की उन्नति में सहायक है वही जीवन का लक्ष्य है। इन लक्ष्यों को ध्यान में रख कर उन्हें प्राप्त करने के लिए जीवन में प्रयत्न करना चाहिये। ये लक्ष्य आयु के अनुकूल भी होते हैं। बचपन में खेलना भी जीवन का लक्ष्य है क्योंकि वह स्वास्थ्य और आनन्द देता है। विद्यार्थी जीवन का मुख्य लक्ष्य विद्या प्राप्त करना है। आगे चलकर परिवार का पालन और आत्म-कल्याण जीवन का लक्ष्य बन जाता है। आयु के अनुसार जीवन के लक्ष्य की साधना करनी चाहिये। जीवन में हम जो पद प्राप्त करना चाहते हैं वह भी जीवन का लक्ष्य कहा जा सकता है। आप क्या बनना चाहते हैं यह पहले से निश्चित कर लेने पर आप उसके लिये उचित प्रयत्न कर सकते हैं। कठिन होने पर भी लक्ष्य बना लेना हितकर है। एक मुख्य लक्ष्य बनाकर उसके सहायक लक्ष्य खोजिए। मुख्य लक्ष्य के सहायक बनकर स्वास्थ्य विद्या आदि के लक्ष्य जीवन को पूर्ण बनाते हैं। उन्नति का लक्ष्य तो सबको ही बनाना चाहिये। काल की गति के साथ साथ यदि आप बुद्धि, गुण, योग्यता, कीर्ति, गौरव और कर्म में आगे बढ़ते जाते हैं तो आपका जीवन सफल है।

१६–जीवन का लक्ष्य

मनुष्य के उद्योग और कर्म स्वतन्त्र हैं। वे मनुष्य की इच्छा पर निर्भर हैं। प्रकृति की क्रियाओं की भाँति वे न अपने आप संचालित होते हैं और न वे अपने आप सम्पन्न होते हैं। प्रकृति की क्रियाओं की भाँति मनुष्य के कर्म की कोई नियत दिशा नहीं है। मनुष्य अपने कर्म की दिशा और कर्म का लक्ष्य स्वयं बनाता है। यह स्वतन्त्रता उसका सौभाग्य भी है और साथ ही एक भार-पूर्ण उत्तरदायित्व भी है। कर्म की चेष्टा के साथ-साथ मनुष्य को अपने कर्म की दिशा और उसके लक्ष्य का निर्धारण भी स्वयं ही करना होता है। ठीक दिशा में किया जाने वाला कर्म ही सार्थक होता है। उत्तम लक्ष्य कर्म को सफल बनाता है। लक्ष्य ही जीवन के कर्म-वृक्ष का फल है। बिना दिशा का जीवन जंगल में आँख बन्द कर भटकने के समान व्यर्थ है। बिना लक्ष्य का कर्म भी निष्फल होता है। अतः जीवन को सार्थक और सफल बनाने के लिये अपने उद्योग की सही दिशा और अपने कर्म का उत्तम लक्ष्य निश्चित कीजिए। सृष्टि की दिशाएँ सूर्य के आलोक से प्रकाशित होती हैं। जीवन की दिशाएँ बुद्धि की प्रतिभा से प्रकाशित होती हैं। अपनी बुद्धि को उज्ज्वल बनाइए तो आपको अपने जीवन की दिशा स्पष्ट दिखाई देगी। जीवन का लक्ष्य बुद्धि के द्वारा निश्चित होता है। किसी लक्ष्य का अन्तिम होना आवश्यक नहीं। ठीक दिशा में चलने पर थोड़ी थोड़ी दूर पर नए नए लक्ष्य मिलते हैं। जीवन का लक्ष्य एक ही नहीं होता। जीवन की पूर्णता अनेक लक्ष्यों के समन्वय से बनती है। उन अनेक लक्ष्यों में सामंजस्य अवश्य होना चाहिए। विरोधी होने पर वे एक दूसरे को खण्डित करते हैं। सामंजस्य होने पर वे एक दूसरे को अधिक मूल्यवान और अधिक आनन्दमय बनाते हैं।

उद्योग और कर्म के लिये जीवन में उत्साह एवं प्ररणा चाहिये। उत्साह

पूर्वक उद्योग कीजिए। किन्तु यह उद्योग सही दिशा में और उत्तम लक्ष्य की ओर होना चाहिए। अपनी बुद्धि को उज्ज्वल बनाइए। उज्ज्वल बुद्धि के प्रकाश में आपको जीवन की सही दिशा दिखाई देगी और उत्तम लक्ष्य मिलेगा।

१७–ऊँचा लक्ष्य बनाइए

जीवन का लक्ष्य ऊँचा बनाइए। ऊँचा लक्ष्य प्राप्त करना कठिन है। किन्तु साहस से और उद्योग से वह प्राप्त हो सकता है। यदि बिल्कुल उस लक्ष्य को प्राप्त न कर सकेंगे, तो भी ऊँचा दृष्टिकोण रखने से आपको जो कुछ भी प्राप्त होगा, वह बहुत कुछ ऊँचा होगा। ऊँचा लक्ष्य बनाकर असफल रहना, नीचा लक्ष्य बनाकर सफल होने से अच्छा है। ऊँचे लक्ष्य में असफलता जीवन में असफलता नहीं लाती। ऊँचा लक्ष्य प्राप्त करने में असफल रहने पर भी जीवन में उन्नति और सफलता ही मिलती है। ऊँचे लक्ष्य से जीवन में उत्साह मिलता है। यह उत्साह ही जीवन में उन्नति का मन्त्र है। ऊँचा लक्ष्य बनाने वाले की शक्ति और बुद्धि भी बढ़ती है। अपनी दुर्बलता देखकर अपने को नीचा और निराश न बनाइये। ऊँचा लक्ष्य बनाकर अपने को उन्नत बनाइए।

किन्तु ऊँचा लक्ष्य बनाने का अर्थ केवल ऊँचे पदों के सपने देखना नहीं है। उन सपनों को सफल बनाने के लिये उचित उद्योग भी अपेक्षित है। यौवन में सपने बहुत दिखाई देते हैं। युवक जीवन में न जाने क्या क्या बनने की कल्पना करते हैं। योवन बड़े उत्साह, ओज और भाव का समय है। जीवन में शक्ति का स्रोत इसी अवस्था में उमड़ता है। बड़ी २ आकांक्षाएँ और कल्पनाएँ रहती हैं। शक्ति में विश्वास का बल होता है और भविष्य में आशाएँ रहती हैं। ये सपने बड़े मधुर और मोहक होते हैं। मन इनमें रम जाता है। सपने देखना यौवन का धर्म और अधिकार है। सुन्दर और ऊँचे सपने देखिए। किन्तु उनकी साधना में

भी अपने को लगाइए । जीवन के सपने सोने वाले के सपने नहीं, जो जागने पर विलीन हो जाते हैं । वे जागने वाले के सपने हैं, जो उसके मन में ऊँचे लक्ष्यों के रूप में रमे रहते हैं और युवकों को उद्योग के लिए प्रेरित करते हैं । ऊँचे सपने देखकर यौवन की भावना और कल्पनाओं को सार्थक कीजिए । उद्योग द्वारा उन सपनों को सत्य बनाकर जीवन सफल कीजिए ।

१८—उन्नति का मार्ग

उन्नति जीवन का सामान्य लक्ष्य है । कोई पद प्राप्त करना जीवन का मुख्य लक्ष्य है । स्वास्थ्य, विद्या, चरित्र, गुण आदि ऐसे लक्ष्य हैं जो मुख्य लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक हो सकते हैं । किन्तु उन्नति एक ऐसा लक्ष्य है जो इन सब लक्ष्यों में व्यापक है । मुख्य लक्ष्य उन्नति की अन्तिम सीढ़ी है । किन्तु उस सीढ़ी पर हम एकदम नहीं पहुँच सकते; क्रम से एक एक सीढ़ी चढ़ते-चढ़ते ही पहुँच सकते हैं । अतः उन्नति का ध्यान रखना महत्वपूर्ण है । वस्तुतः उन्नति ही जीवन है । उन्नति का अर्थ विकास है । बीज से आरम्भ होकर वृक्ष बढ़ता ही जाता है । बचपन से लेकर यौवन तक मनुष्य भी बढ़ता है । यह शारीरिक विकास है । किन्तु शारीरिक विकास ही मनुष्य जीवन का सम्पूर्ण प्रयोजन नहीं है । शरीर का भी महत्व है । वह जीवन की उन्नति का आधार है, अतः शरीर के विकास का भी पूरा ध्यान रखना चाहिये । किन्तु मनुष्य जीवन का विकास शिक्षा, ज्ञान, बुद्धि, साहस, उत्साह, उद्योग आदि के द्वारा होता है ।

समाज और सभ्यता की उन्नति प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के द्वारा ही होती है । अतः प्रत्येक मनुष्य को अपनी उन्नति करनी चाहिये । छात्रा-वस्था उन्नति का मुख्य युग है । यही समय है जबकि जीवन की सबसे

अधिक उन्नति हो सकती है। उन्नति का मूलमंत्र शक्ति है। अपनी लघु काया में अन्तर्निहित अपार शक्ति से ही वट आदि वृक्षों के लघु बीज विशाल वृक्ष बनते हैं। मनुष्य का शरीर भी शक्ति की प्रेरणा से बढ़ता है। शिक्षा, विद्या, ज्ञान, संस्कृति आदि की उन्नति मन की शक्ति से होती है। साहस, उत्साह, तत्परता अथवा लगन आदि मन के उन्नतिकारी गुण हैं। उद्योग और परीश्रम इस उन्नति का मार्ग है। साहस एवं उत्साहपूर्वक कर्म में तत्पर रहिये और उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ते जाइये। जीवन का मार्ग ज़मीन के मार्गों की भाँति स्थूल नहीं है। अतः देखते जाइये कि विद्या और गुणों में आप प्रतिवर्ष कितना विकास कर रहे हैं।

१६—उन्नति का अर्थ क्या है

उन्नति का अर्थ आगे बढ़ना है। किन्तु जीवन का मार्ग जमीन की लम्बाई नहीं है, जिसे हम नाप सकें और न जीवन की गति चरणों का क्रम है, जिसे हम गिनते चलें। अतः जीवन की उन्नति को समझना और उसका अनुमान लगाना कठिन है। स्वास्थ्य, शरीर, धन, पद, आदि स्थूल वस्तुओं की उन्नति को सरलता से समझ सकते हैं। किन्तु विद्या, चरित्र आदि इनके समान स्थूल नहीं हैं। अतः विद्या, चरित्र, आदि की उन्नति को ध्यानपूर्वक परखना चाहिये। विद्या के क्षेत्र में आप प्रति वर्ष नई कक्षा में चढ़ते जाते हैं। यह भी उन्नति का एक रूप है। किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं है। अच्छे अङ्कों से और अच्छी श्रेणी में उत्तीर्ण होना विद्या की उन्नति का प्रमाण है। चरित्र की उन्नति की ओर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं। छात्र-जीवन चरित्र के निर्माण का युग है। चरित्र के गुण विद्या को भी श्रेष्ठतर बनाते हैं। उनसे बुद्धि निर्मल और सशक्त होती है। अतः विद्या के साथ चरित्र की उन्नति का ध्यान रखने से छात्र-जीवन में भविष्य की सुन्दर और सुदृढ़ भूमिका बनती है।

गुण और दोषों के द्वारा हम उन्नति का अर्थ अधिक सरलता से समझ सकते हैं। गुणों का बढ़ना और दोषों का कम होना ही उन्नति है। बहुत से गुण-दोष हमारे सामने नित्य आते रहते हैं। विद्या के दोष परीक्षा द्वारा गुरु बता सकते हैं। आजकल शिक्षा और परीक्षा ऐसी नहीं लगती कि छात्रों को अपनी योग्यता के गुण और अयोग्यता के दोष मालूम हों। परीक्षा में अङ्क मिलते हैं, जिनसे केवल यह ज्ञात होता है कि आपकी योग्यता का मूल्य क्या है। उसके गुण-दोष न मालूम होने के कारण आपको अपनी उन्नति का सही अनुमान नहीं लगता। चरित्र के गुण-दोष प्रायः हमारे सामने आते हैं, किन्तु उनको समझना और मानना कठिन है। उत्तम गुरुओं के सम्पर्क से विद्या और चरित्र दोनों का साक्षात् आदर्श सामने रहता है। गुरु का कर्त्तव्य है कि वह दोषों को बताकर उन्हें दूर करने में सहायक हो तथा गुणों की प्रशंसा कर उनके संवर्धन की प्रेरणा दे। शिष्य का कर्त्तव्य है कि गुरुजनों के आदर्श के आलोक में दोषों को दूर कर गुणों को बढ़ाएँ। यही जीवन में उन्नति का मार्ग है।

२०—जीवन के सोपान

जीवन एक सोपान क्रम है। वह एक सीढ़ी है सड़क नहीं। उसमें आप आगे ही नहीं बढ़ते जाते हैं, बल्कि आगे बढ़ने के साथ ऊपर भी उठते जाते हैं जैसा कि सीढ़ी चढ़ने में होता है। जीवन की गति के साथ साथ जीवन का स्तर अथवा धरातल भी उठता जाता है। इसे जीवन की उन्नति कह सकते हैं। उन्नति में ही जीवन की वास्तविक सफलता है। यह उन्नति एक साथ नहीं होती। धीरे २ क्रमशः होती है। इसलिये जीवन को सोपान कहना अधिक उचित है। सड़क पर टहलने की अपेक्षा सीढ़ी पर चढ़ने में अधिक श्रम होता है। जीवन में भी उन्नति परिश्रम से होती है। सीढ़ी पर चढ़ने में अधिक ध्यान भी

रखना पड़ता है; सड़क पर हम अधिक आसानी और लापरवाही से चल सकते हैं। सड़क पर गिरने का डर भी कम रहता है। सीढ़ी पर चढ़ने में सही ध्यान न रहने पर गिरने और ठोकर लगने का डर भी अधिक रहता है। ऐसा जीवन में भी होता है।

सीढ़ियों पर हम एक एक कर क्रम से चढ़ते हैं। कुछ पराक्रमी बीच में सीढ़ियों को लाँघते भी जाते हैं। किन्तु वे भी क्रम से ही चढ़ते हैं। एकदम लाँघ कर ऊपर नहीं पहुँच जाते। इसी प्रकार जीवन में उन्नति के शिखर पर पहुँचने के लिये एक एक सीढ़ी चढ़ना होगा। जीवन की इन सीढ़ियों को ध्यान दीजिये और दृढ़ता पूर्वक उन पर चढ़ते जाइये। इनमें प्रत्येक सीढ़ी जीवन का निकट लक्ष्य है। मुख्य लक्ष्य और जीवन का शिखर उन्नति के क्रम की अन्तिम सीढ़ी है। जीवन के लक्ष्यों को ऐसे क्रम में संजोइये कि जीवन एक व्यवस्थित सोपान परम्परा बन जाये और आप उस पर सुगमता से चढ़ते जाएँ। आयु के वर्षों का क्रम जीवन की उन्नति का एक नैसर्गिक सोपान-क्रम है। प्रतिवर्ष आपको अपनी उन्नति का लेखा करना चाहिये। विद्यालय की कक्षाएँ भी एक सोपान परम्परा है। प्रति अगली कक्षा में आपकी योग्यता बढ़नी चाहिये। भाषा, ज्ञान, विचार, बुद्धि, विवेक, साहस, दृढ़ता, लगन, सहिष्णुता आदि गुणों में क्रमिक वृद्धि एक दूसरी सोपान परम्परा है। योग्यता और गुणों में निरन्तर वृद्धि का ध्यान रखकर जीवन में उन्नति का मार्ग बनाइये।

२१–शिक्षा का महत्व

शिक्षा मनुष्य जीवन के विकास और उसकी उन्नति का साधन है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य के समाज में सभ्यता, संस्कृति और साहित्य का विस्तार हुआ है। शिक्षा के द्वारा ही मनुष्य के जीवन में ऐसे संस्कार और गुण विकसित होते हैं जिनमें मनुष्य समाज में ऊँचे पद के योग्य बनता है। बिना शिक्षा के मनुष्य समाज में ऊँचा पद प्राप्त करने

की आशा नहीं कर सकता। व्यक्तिगत जीवन में भी उसके जीवन का मूल्य और महत्व बिना शिक्षा के पूर्ण नहीं हो सकता। पशुओं की तुलना में शिक्षा ही मनुष्य की विशेषता है। बिना शिक्षा का मनुष्य पशु के तुल्य समझना चाहिये। एक संस्कृत कवि ने कहा है कि 'साहित्य संगीत और कला से रहित मनुष्य पूँछ और सींगों के रहित पशु है'। मनुष्य के बालक का विकास पशुओं की अपेक्षा बहुत अधिक होता है और उसमें बहुत समय भी लगता है। यौवन में शरीर के विकास की पूर्णता के साथ मनुष्य की शिक्षा भी पूर्ण होती है। इस काल में उत्तम शिक्षा प्राप्त कर अपने जीवन को उन्नत और सफल बनाइये।

आधुनिक युग में शिक्षा का महत्व अधिक बढ़ा है और शिक्षा का अनेक क्षेत्रों में विस्तार हुआ है। प्राचीन युगों में राजा, मंत्री आदि अशिक्षित होने के उदाहरण मिलते हैं। उद्योग और व्यापार में शिक्षा की अधिक आवश्यकता नहीं थी। किन्तु वर्तमान युग में राजनीति, शासन, उद्योग व्यापार आदि सभी क्षेत्रों में शिक्षा का महत्व बढ़ गया है। वर्तमान जीवन, शासन तथा व्यापार की व्यवस्था इतनी जटिल एवं विकसित हो गई है कि आज इन क्षेत्रों में ऊँची शिक्षा के बिना काम नहीं चल सकता। सभी क्षेत्रों में शिक्षित मनुष्यों की आवश्यकता है। जिनकी शिक्षा श्रेष्ठ है उन्हें अच्छे पद आसानी से मिल सकते हैं। अतः आज के युग में शिक्षा ही जीवन में उन्नति का मुख्य द्वार है। श्रेष्ठ शिक्षा प्राप्त करके आप अपनी उन्नति का मार्ग बनाइये। जीवन का जो भी क्षेत्र आप चुनें उससे सम्बंध रखने वाली शिक्षा में आपकी सफलता अच्छी होनी चाहिये। तभी आप जीवन में उन्नति कर सकेंगे।

२२–शिक्षा की त्रिवेणी

शिक्षा का अभिप्राय केवल किसी विद्यालय में भर्ती होकर परीक्षा पास करना नहीं है। आजकल विद्यालयों में छात्रों की पढ़ाई भी अच्छी नहीं

हो रही है, परीक्षा फल भी अच्छे नहीं हैं। किन्तु केवल पढ़ाई शिक्षा नहीं है। विद्या और ज्ञान का शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान है। किन्तु विद्या सम्पूर्ण शिक्षा का केवल एक अङ्ग है। पूर्ण शिक्षा का अर्थ मनुष्य के जीवन और व्यक्तित्व का परिपूर्ण विकास है। इस शिक्षा में स्वास्थ्य, विद्या और चरित्र का विकास एवं उद्योग की कुशलता सभी सम्मिलित हैं। स्वास्थ्य का सम्बन्ध शरीर और मन दोनों से है। सुन्दर और वलिष्ठ शरीर से स्वास्थ्य का वाहरी प्रमाण मिलता है। किन्तु स्वास्थ्य का आन्तरिक लक्षण शरीर के अङ्गों की शक्ति और उनकी समर्थ प्रक्रिया है। शरीर के अङ्गों का अच्छी तरह काम करना स्वास्थ्य का मूल लक्षण है। स्वास्थ्य ही व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का आधार है।

विद्या का अर्थ वुद्धि का विकास और ज्ञान का उपार्जन है। वुद्धि मन की वह सामान्य शक्ति है, जिसके द्वारा अनेक प्रकार के विषयों का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। ज्ञान मन की वह सम्पत्ति है, जो वुद्धि के द्वारा उपार्जित होती है। विद्या जीवन का प्रकाश है। इसी प्रकाश से जीवन में उन्नति का मार्ग आलोकित होता है। किन्तु केवल ज्ञान में शिक्षा पूर्ण नहीं होती। यदि शिक्षा का अर्थ व्यक्तित्व का समुचित विकास है, जो चरित्र का निर्माण शिक्षा को पूर्ण वनाता है। चरित्र में ज्ञान के अतिरिक्त सत्य, साहस, सदाचार, आदि अन्य मानवीय गुणों का समाहार है। गुणों के विकास और सामञ्जस्य से चरित्र वनता है। चरित्र से स्वास्थ्य और ज्ञान को भी वल मिलता है। चरित्र जीवन की आन्तरिक शक्ति है। वह स्वास्थ्य के निर्माण में भी सहायता देता है और विद्या के उपार्जन में भी उसका सहयोग रहता है। शिक्षा की इस पूर्ण परिभाषा के प्रकाश में परखिये कि आपकी शिक्षा कितनी पूर्ण अथवा अपूर्ण है ? आपका स्वास्थ्य कितना प्रवल है ? वुद्धि कितनी तीव्र है ? ज्ञान कितना विपुल है ? चरित्र कितना उज्ज्वल है ?

२३—शिक्षा और विद्या

शिक्षा और विद्या का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्पूर्ण शिक्षा की दृष्टि से विद्या उसका एक अङ्ग है। किन्तु शिक्षा के समग्र रूप में विद्या की प्रधानता है। विद्या जीवन का प्रकाश है। इस प्रकाश के विना सर्वत्र अन्धकार छा जाता है। विद्या के द्वारा सभी बातों का सही ज्ञान प्राप्त होता है। शिक्षा, स्वास्थ्य, चरित्र, आदि का भी सही रूप क्या है और उनके विकास के क्या साधन हैं, यह भी विद्या के द्वारा ही जाना जाता है। इनका सही ज्ञान होने पर ही जीवन में ये प्राप्त किये जा सकते हैं। मनुष्य के जीवन में कोई वस्तु अपन आप नहीं होती, जैसे कि प्रकृति के क्षेत्र में होती है। मनुष्य जो कुछ प्राप्त करता है वह उसे अपने उद्योग से ही प्राप्त होता है। शिक्षा, विद्या, ज्ञान और चरित्र के विषय में यह विशेष रूप से सत्य है। ये विना अपने उद्योग के प्राप्त नहीं होते। गुरुजनों से आपको इसमें सहायता मिल सकती है किन्तु आपका अपना उद्योग ही इनको आपके जीवन की विभूति बना सकता है।

शिक्षा का मूलतत्व होने के कारण विद्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है। वह मनुष्य की सर्वोत्तम विभूति है। कवियों ने विद्या को मनुष्य का भूषण बताया है। विद्या मनुष्य के मन का सौन्दर्य है। आज विश्व के देश विद्या के द्वारा ही उन्नति के पथ में बढ़कर चन्द्रलोक तक पहुँच रहे हैं। आप छात्र हैं, विद्यार्थी हैं अर्थात् विद्या का उपार्जन कर रहे हैं, कक्षाओं में अध्यापकों के भाषण सुनते हैं, पुस्तकें पढ़ते और याद करते हैं। किन्तु आप विद्या के महत्व के प्रति कितने सजग हैं ? आपकी विद्या कितनी सशक्त और समर्थ है ? आपकी बुद्धि कितनी तीव्र है ? आपका ज्ञान कितना सम्पन्न है ? अध्ययन के द्वारा आपकी बुद्धि कितनी विकसित हो रही है ? जीवन के लक्ष्य, उद्देश्य, मूल्य तथा स्वास्थ्य और चरित्र के सम्बन्ध में आपका ज्ञान कितना स्पष्ट है ? स्वयं विद्या के ही रूप और

रहस्य को आप कितनी गहराई से समझते हैं ? विद्या का महत्व और रहस्य समझना विद्याओं की भी विद्या है ।

२४—विद्या के अङ्ग

विद्या का अर्थ प्रधानतः बुद्धि और ज्ञान का विकास है। बुद्धि मन की चेतन शक्ति है, जिसके द्वारा ज्ञान उपार्जित किया जाता है। ज्ञान चेतना की सम्पत्ति है, जिससे मनुष्य का मन और जीवन सम्पन्न बनता है। मनुष्य के जीवन में विद्या एक भूषण ही नहीं, एक विभूति भी है । विद्या और बुद्धि की शक्ति से ही संसार के देश उन्नति के मार्ग में बढ़ रहे हैं। विद्या के द्वारा मनुष्य का जीवन श्रेष्ठ बनता है। विद्यावान मनुष्य अपने जीवन की उन्नति कर देश की उन्नति में सहायक होता है । आप छात्र हैं, विद्यार्थी हैं अर्थात् विद्या का उपार्जन कर रहे हैं । आपके जीवन का सर्वोत्तम काल विद्याध्ययन में व्यतीत हो रहा है। आपका यह समय और श्रम तभी सार्थक हो सकता है, जबकि आप विद्या के रूप और रहस्य को भलीभाँति समझें। इनको समझकर उत्तम विद्या प्राप्त करने से आपका जीवन सफल होगा। विद्या के अंगों को समझने से विद्या के पूर्ण रूप का ज्ञान हो सकता है। बुद्धि, ज्ञान, भाषा, लिपि, विषय, स्मरण, परीक्षा, तर्क, विवेक आदि विद्या के प्रमुख अंग हैं।

बुद्धि मनुष्य की चेतना की वह शक्ति है, जिसके द्वारा मनुष्य ज्ञान के मार्ग में अग्रसर होता है, जिस प्रकार शरीर की शक्ति के द्वारा वह चलता है। ज्ञान वह प्रकाश है, जिसमें पदार्थों, तत्वों, सिद्धान्तों आदि का स्वच्छ रूप प्रकट होता है। बुद्धि विद्युत शक्ति के समान है, तो ज्ञान उससे उत्पन्न होने वाले प्रकाश के समान है। बुद्धि की परीक्षा नई बातों, नई पुस्तकों, नये विषयों के समझने में होती है। भाषा

वाणी का मुखर रूप है। लिपि भाषा का अक्षरों के संकेतों द्वारा अंकन है। मनुष्य का ज्ञान भाषा और लिपि के रूप में ही परस्पर आदान प्रदान का विषय और समाज की परम्परा बनता है। भाषा और लिपि ज्ञान के माध्यम हैं। विषय उन क्षेत्रों का नाम है, जिन्हें ज्ञान प्रकाशित करता है। ये विषय जीवन और जगत के अंग हैं। ये ज्ञान की सम्पत्ति के संचित कोष हैं। स्मरण शक्ति के द्वारा पुराना ज्ञान सुरक्षित रहता है। परीक्षा में विद्या और बुद्धि का मूल्यांकन किया जाता है। आपकी विद्या कितनी पूर्ण अथवा अपूर्ण है, इसका अनुमान आप विद्या के विविध अंगों में अपनी कुशलता देख कर लगाइये।

२५–विद्या का रहस्य

विद्या के अंग उसके बाहरी पक्ष हैं, जो विद्या के शरीर का निर्माण करते हैं। इन अंगों के गठन और सौष्ठव में विद्या साकार होती है। किन्तु विद्या की एक आत्मा भी है, जो इन सभी अंगों को अनुप्राणित करती है। उस आत्मा से प्रेरित और प्रकाशित होकर ही विद्या के ये समस्त अंग एक सुन्दर जीवन को रूप देते हैं। विद्या की यह आत्मा क्या है ? मूलतः तो विद्या की यह आत्मा मनुष्य की चेतना शक्ति है, जो मनुष्य में भगवान की विभूति है। मनुष्य में यह चेतना बाल्यकाल से कैसे विकसित होती है, यह जीवन का एक बड़ा चमत्कार है। एक नादान शिशु किस प्रकार धीरे-धीरे जीवन और जगत की बातों को जानता चलता है तथा युवक होने तक विद्वान् बनता है, यह एक अद्भुत रहस्य है। आप किसी छोटे बालक को साहित्य अथवा गणित की कोई नई बात समझाकर देखिए तो आपको विदित होगा कि नई बात सीखना और सिखाना दोनों ही कितने कठिन कार्य हैं।

विद्या के सब अंगों को विकसित करने के लिए विद्यालय बने हैं।

जहाँ योग्य अध्यापक सभी बातों की शिक्षा देते हैं। प्राचीनकाल में भी विद्यालय और गुरु थे, चाहे उनका रूप आज से भिन्न हो। प्रायः गुरु दण्ड और उपदेश के द्वारा शिष्यों को विद्या सिखाते रहे हैं ? दण्ड की प्रथा अब कम हो रही है, क्योंकि मनोविज्ञान उसे ग़लत बताता है। उपदेश की प्रथा तो अब भी चल रही है। उपदेश को ही शिक्षण समझा जाता है। किन्तु उपदेश विद्या का बाहरी साधन है। वस्तुतः विद्यार्थी अपनी चेतना द्वारा ही विद्या को ग्रहण करता है। इस चेतना के मन्द होने पर उपदेश निष्फल होता है, जैसा कि आजकल हो रहा है। ज्ञान को गीता में दीपक कहा है। विद्या की साधना दीपावली के समान है, जिसमें एक दीपक से अन्य दीपक जलाये जाते हैं। गुरु की चेतना एक जलते हुए दीपक के समान है। उससे स्पर्श होने पर शिष्य की चेतना का दीपक भी जल उठता है। चेतना का आन्तरिक सम्पर्क ही विद्या का रहस्य है। यह रहस्य ही विद्या की आत्मा है। इसके बिना विद्या के अंग मृत शरीर के समान निष्प्राण होते हैं। आपको गुरु की चेतना का निकट सम्पर्क कितना प्राप्त हुआ है, इसी से अनुमान लगाइए कि आपकी विद्या कितनी प्राणवान् है।

२६–विद्या की त्रिवेणी

विद्या में ज्ञान की प्रधानता अवश्य होती है, किन्तु केवल ज्ञान ही विद्या को पूर्ण नहीं बनाता। ज्ञान के साथ भाव का भी समुचित विकास होने से विद्या सन्तुलित और सरस बनती है। ज्ञान निष्क्रिय है। अतः ज्ञान-प्रधान विद्या मनुष्य को निष्क्रिय बनाती है। अधिकांश शिक्षित और विद्वान् लोग कर्म की ओर से उदासीन दिखाई देते हैं। सभ्यता में श्रम की समस्या ज्ञान की एकांगी साधना से ही उत्पन्न हुई है। वर्तमान शिक्षा का ढंग भी कुछ ऐसा है कि शिक्षित लोगों की

कर्म में रुचि नहीं रहती। वे सुविधा और आराम का जीवन पसन्द करते हैं। स्वतन्त्रता के नव जागरण में देश का निर्माण कर्म की माँग कर रहा है। किन्तु कर्म के प्रति उदासीनता उत्पन्न करने वाली शिक्षा इस निर्माण में बाधक बन रही है।

ज्ञान कर्म के मार्ग को प्रकाशित अवश्य करता है, किन्तु ज्ञान में कर्म की प्रेरणा नहीं होती। कर्म की प्रेरणा भाव में होती है। भाव से संयुक्त होकर ही ज्ञान कर्म की प्रेरणा बनता है। ज्ञान चेतना का प्रकाश है। भाव हृदय का उत्साह है। ज्ञान की उज्ज्वल गंगा और भाव की गंभीर यमुना के समानान्तर प्रवाह से ही जीवन का क्षेत्र पवित्र और उर्वर बनता है। इनके संगम पर ही जीवन का तीर्थराज बसता है। भाव की यमुना का जल लेकर ही ज्ञान की गंगा विद्या के सागर की ओर बढ़ती है। भाव की प्रेरणा ज्ञान को गति और कर्म को उत्साह देती है। यह कर्म ही जीवन की गंगा का पवित्र प्रवाह है। इसके पीछे संकल्प की शक्ति रहती है। संकल्प मन का दृढ़ निश्चय है, जिसके द्वारा हम कर्म में तत्पर होते हैं। संकल्प की अलक्षित सरस्वती ही कर्म के तीर्थराज में ज्ञान और भाव के संगम को त्रिवेणी का रूप देती है। ज्ञान, भाव और संकल्प को विद्या की त्रिवेणी की तीन धाराएँ समझना चाहिए। भाव के रस और संकल्प की शक्ति से ही ज्ञान की गंगा का प्रवाह यौवन के तीर्थराज से आगे बढ़ता है।

२७–ज्ञान जीवन का प्रकाश है

ज्ञान जीवन का प्रकाश है। वह मनुष्य की चेतना का प्रकट विभूति है। जिस चेतना का विकास मनुष्य को पशुओं से श्रेष्ठ बनाता है वह ज्ञान के रूप में ही फलित होती है। विद्याध्ययन का अभिप्राय ज्ञान का

ही उपार्जन है। अतः ज्ञान छात्रों की अनमोल सम्पत्ति है। नीतिकारों ने विद्या को समस्त धनों में प्रधान कहा है। यह ठीक ही है। ज्ञान के द्वारा ही अन्य धन अर्जित किये जाते हैं। अज्ञानी और अशिक्षित को जीवन में अच्छा पद पाना तथा धन उपार्जन करना भी कठिन है। वर्तमान युग में यह और भी सत्य है। सभी अच्छे पदों के लिये अच्छी योग्यता और विद्या की आवश्यकता है। आज का व्यापार और व्यवसाय भी अच्छी शिक्षा होने पर ही सफलता से संचालित किया जा सकता है। ज्ञान के प्रकाश में ही हमें जीवन और जगत के रहस्य मालूम होते हैं। सभ्यता का विकास ज्ञान का ही फल है।

इस प्रकार जीवन में ज्ञान की उपयोगिता स्पष्ट है। ज्ञान जीवन की शक्ति है। किन्तु उपयोगिता के अतिरिक्त ज्ञान का अपने आप में भी वहुत मूल्य है। ज्ञान अपने आप में भी सन्तोषजनक है। जिन वातों से हमें कोई प्रकट लाभ नहीं है उन्हें जानकर भी संतुष्ट होते हैं। विना लाभ को सोचे भी हमें जानने की इच्छा होती है। जानने की इच्छा को 'जिज्ञासा' कहते हैं। विज्ञानों और दर्शनों का विकास इसी जिज्ञासा से हुआ है। जिन्होंने विज्ञान में प्रकृति के रहस्यों को और दर्शनों में जीवन के रहस्य को खोजा है वे अपनी खोज में किसी लाभ की कामना से प्रेरित नहीं हुये थे। मनुष्य की चेतना ज्ञान के विकास में विकसित होती है। अतः विना लाभ के भी मनुष्य ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। वालक में भी जिज्ञासा होती है। इसी जिज्ञासा में विद्या का वीज है। विना लाभ के ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होना विद्यार्थियों के लिये आवश्यक है। सत्य और ज्ञान का प्रेम छात्र का प्रथम धर्म है। ज्ञान का प्रेम ही वृद्धवय की उदासीनता एवं शिथिलता में नवीनता और प्रगति का मार्ग वनाता है।

२८–भाव जीवन की विभूति है

विद्या का मुख्य रूप ज्ञान है। शिक्षा का अधिकांश ज्ञान का ही उपार्जन है। किन्तु ज्ञानोपार्जन ही सम्पूर्ण शिक्षा नहीं है। मनुष्य की समस्त चेतना ज्ञान में ही कृतार्थ नहीं होती। ज्ञान के अतिरिक्त भाव भी मनुष्य की चेतना का एक प्रमुख रूप है भाव हृदय की विभूति है, जबकि ज्ञान मस्तिष्क की सम्पत्ति है। प्रेम, सौहार्द, दया, करुणा, उत्साह, सहानुभूति, सम्मान आदि भाव के कुछ मुख्य रूप हैं। ज्ञान शुष्क और उदासीन है। उसमें रस नहीं होता और वह वस्तुओं को तटस्थ दृष्टि से देखता है। वह केवल उनके सत्य को खोजना चाहता है। भाव उदासीन नहीं होता। उदासीनता भाव की शून्यता है। भाव सरस होता है। ज्ञान की रुचि स्नेह की अपेक्षा सत्य में अधिक होती है। भाव का बीज स्नेह है। स्नेह दूसरों के प्रति अच्छा भाव है भाव में मनुष्यता अधिक उदार रूप में स्फुटित होती है। अतः भाव के विना मनुष्य जीवन नीरस, उदासीन और अपूर्ण रह जाता है।

शिक्षा भी भाव के विना पूरी नहीं होती। शिक्षा केवल ज्ञान का ही उपार्जन नहीं है। उत्तम भावों के संस्कार स्थापित और विकसित करना भी पूरी शिक्षा में महत्वपूर्ण है। भावों से जीवन में सरसता और स्फूर्ति का संचार होता है। जीवन में उत्साह का स्रोत भाव में ही निहित है। उत्साह जीवन में सफलता का साधन है। अतः जीवन की सफलता के लिये भावना बड़ी महत्वपूर्ण है। ज्ञान का सम्पादन भी अकेले भलीभांति नहीं हो सकता। किन्तु भाव का अस्तित्व ही अकेले में असम्भव है। भाव दूसरों के साथ सम्बन्ध में ही अमर होता है। आज की सभ्यता और शिक्षा में अकेलापन बढ़ रहा है। हृदय में भावपूर्ण सम्बन्ध क्षीण हो रहे हैं। अतः जीवन नीरस और उदासीन हो रहा है। अपनी शिक्षा को पूर्ण बनाने के लिये अपने साथियों,

अध्यापकों आदि के साथ स्नेह, सम्मान आदि के भाव बढाइए। आपको अनुभव होगा कि आपके व्यक्तित्व का गौरव और जीवन का आनन्द बढ़ रहा है। साथ ही सभ्यता की रक्षा की दिशा भी भावों का सम्बन्ध है।

२९–कर्म जीवन का निर्माता है

ज्ञान जीवन का प्रकाश है किन्तु भाव जीवन की विभूति है। ज्ञान से जीवन का मार्ग आलोकित होता है, किन्तु भाव से जीवन की गति सरस और आनन्दमय बनती है। दोनों के सहयोग से जीवन की धारा सफलता के पथ पर अग्रसर होती है। ज्ञान के प्रकाश में भाव की स्फूर्ति कर्म की प्रेरणा बनती है। यह कर्म जीवन का स्वरूप है। कर्म ही जीवन का निर्माता है। कर्म के बिना जीवन में कोई फल प्राप्त नहीं हो सकता। कर्म से विश्व की व्यवस्था बनी हुई है। सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि सब निरन्तर चलते रहते हैं। यह चलना ही इनका कर्म है। न्यायशास्त्र में कर्म की यही परिभाषा है। मनुष्य जीवन की रक्षा और समृद्धि के लिये भी कर्म आवश्यक है। अतः ज्ञान की भांति, केवल भाव की सरसता में भी शिक्षा पूर्ण नहीं होती। कर्म की सक्रियता में ज्ञान और भाव सफल होते हैं। शिक्षा की पूर्णता ज्ञान, भाव और कर्म की त्रिवेणी के संगम में होती है। इसी संगम पर सभ्यता और संस्कृति का अक्षयवट अमर रहता है।

यदि कर्म जीवन का धर्म है तथा कर्म के द्वारा ही शिक्षा पूर्ण होती है, तो छात्रों को कर्म में भी श्रद्धा रखनी चाहिये। कर्ममय जीवन ही सफल और सार्थक है। कर्म में ही भाव की सरसता कृतार्थ होती है। बिना कर्म के भाव निष्फल है। जो प्रेम, करुणा, सम्मान आदि के भाव अनुरूप कर्म में प्रकट नहीं होते वे सच्चे भाव नहीं हैं।

सच्चे भाव कर्म में व्यक्त होकर दूसरों के जीवन में सक्रिय योग देते हैं। ज्ञानोपार्जन भी मानसिक कर्म है। विद्याध्ययन के लिए भी कर्म में श्रद्धा अपेक्षित है। अतः विद्यार्थियों को कर्मयोगी और कर्मवीर बनना चाहिये। आलस्या और उदासीनता विद्यार्थियों के सबसे बड़े शत्रु हैं। कर्म में रुचि होने के साथ-साथ कुशलता भी होनी चाहिये। गीता में कर्म की कुशलता को 'योग' कहा है। कर्म मानसिक और शारीरिक दो प्रकार के होते हैं। दोनों प्रकार के कर्मो में समान श्रद्धा जीवन का सन्तुलन बनाती है। केवल स्वार्थमय कर्म जीवन को संकुचित बनाता है। परार्थ में ही अच्छे भाव सफल होते हैं और जीवन कृतार्थ होता है। शारीरिक कर्म से घृणा न कीजिये। वह आपके शरीर को स्वस्थ और सबल बनाता है। मानसिक कर्म जीवन की उन्नति का पथ निर्माण करता है। दोनों का सन्तुलन जीवन को सुन्दर, सफल और आनन्दमय बनाता है।

३०—मनुष्य जीवन और कर्म

मनुष्य जीवन अत्यन्त श्रेष्ठ और मूल्यवान है। मनुष्य से बढ़कर कोई प्राणी संसार में नहीं है। देह और रूप का जो सौन्दर्य मनुष्य को प्राप्त है, वह देवताओं के योग्य है। दिव्य रूप से ही देवता की कल्पना प्रसूत हुई है। देह से भी बढ़कर श्रेष्ठ है मनुष्य की बुद्धि और प्रतिभा। यह पशुओं को प्राप्त नहीं। बुद्धि और प्रतिभा के द्वारा ही मनुष्य समाज में सभ्यता, संस्कृति, साहित्य, दर्शन, विज्ञान आदि का विकास हुआ है। इनके विकास से प्रत्येक व्यक्ति का जीवन भी पशुओं की अपेक्षा सुन्दर और सम्पन्न बना है। जहाँ पशु प्राकृतिक भोजन से निर्वाह करते हैं, वहाँ मनुष्य नाना प्रकार के सरस और स्वादिष्ट षट्रस व्यंजनों का भोजन करता है। वह सुन्दर भवनों में रहता है। सुन्दर वस्त्र पहनता

है। सभ्यता और शिक्षा से मनुष्य का मानसिक जीवन भी पशुओं से अधिक उन्नत बनता है। मनुष्य के मन और हृदय में जो भाव प्रस्फुटित होते रहे हैं उनसे साहित्य ही सम्पन्न नहीं हुआ है मानव समाज का जीवन भी अधिक मधुर और आनन्दमय बना है।

मनुष्य जीवन की इन श्रेष्ठताओं ने मनुष्य के उत्तरदायित्व को भी बढ़ा दिया है। मनुष्य को विविध और स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर-भवन और वस्त्र तथा अन्य आनन्दों के उपभोग का वरदान मिला है। किन्तु यह वरदान उसने किसी देवता की कृपा से नहीं, अपने उद्योग से ही प्राप्त किया है। आपको भी अपना जीवन श्रेष्ठ बनाने के लिए और सुन्दर जीवन का आनन्द लेने के लिये स्वयं उद्योग करना होगा। मनुष्य के सभ्य जीवन में जिन वस्तुओं की आवश्यकता है वे उसे बिना उद्योग के नहीं मिल सकती। बचपन में भोजन, वस्त्र आदि माता-पिता के उद्योग से मिलते हैं। किन्तु बड़े होकर आपको इनके लिये भी उद्योग करना होगा। शिक्षा, विद्या और गुण आपको सदा अपने ही उद्योग से मिलेंगे। उद्योग ही मनुष्य जीवन का धर्म और कर्म है। इसी धर्म के पालन से मनुष्य-जीवन सफल होता है। धर्म और कर्म भाग्य नहीं, अपना उद्योग ही है। जीवन की सफलताओं के लिये उद्योग के लिए उद्यत रहिये और कर्म में तत्पर रहिये, सफलता आपके स्वागत की बाट देख रही है।

३१—संकल्प ही शक्ति है

यदि कर्म जीवन का धर्म है, तो संकल्प उसकी शक्ति है। संकल्प की शक्ति से ही कर्म सम्भव होता है। संकल्प का अर्थ निश्चय है। संकल्प केवल बुद्धि का निश्चय नहीं है। संकल्प में मनुष्य की आत्मा, उसकी समग्र चेतना एक निर्णयात्मक रूप ग्रहण करती है। मनुष्य की क्षमता संकल्प के रूप में ही कर्म को प्रेरित और संचालित करती है। संकल्प का

प्रकट रूप दृढ़-निश्चय-पूर्वक कर्म के लिये उद्यत होना है। संकल्प अथवा निश्चय बहुत सोच-विचार कर किया जाता है और करना चाहिये। सोच विचार के लिये ज्ञान अपेक्षित है। अतः संकल्प ज्ञान पर आश्रित है। ज्ञान के प्रकाश में ही संकल्प बनते हैं। किन्तु भाव की प्रेरणा ही बुद्धि के निश्चय को सक्रिय बनाती है। भाव की प्रेरणा में ही कर्म के उत्साह का स्रोत है। अतः भाव का भी संकल्प में बहुत योग है। भाव की स्फूर्ति से अनुप्राणित होकर ज्ञान के निर्देश संकल्प का सशक्त रूप ग्रहण करते हैं और कर्म में सफल होते हैं।

संकल्प की दृढ़ता मानसिक शक्ति की सूचक है। संकल्प की दुर्बलता होने पर यथेच्छ कर्म संभव नहीं होता। हम कर्म करने की कामना करते हैं किन्तु दुर्बलता के कारण जैसा कर्म करना चाहते हैं वैसा कर नहीं पाते। अतः हमें वाञ्छित फल भी नहीं मिलता। अतएव संकल्प को दृढ़ और सबल बनाना आवश्यक है। शिक्षा का उद्देश्य केवल ज्ञान को बढ़ाना नहीं है। भाव को समृद्ध बनाकर संकल्प को दृढ़ करने में शिक्षा पूर्ण होती है। संकल्प को 'इच्छा शक्ति' भी कहते हैं। हम जो चाहते हैं वह इच्छा है। हमारी इच्छा स्वतंत्र है। हम जो चाहें इच्छा कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि हम अपनी स्वतंत्र इच्छा से कर्म का दृढ़ निश्चय भी कर सकें तो यह हमारी स्वतन्त्रता की सबसे बड़ी सफलता है। सभी कार्यों में स्वतन्त्रता का अभ्यास करने से संकल्प की दृढ़ता बढ़ती है। आपकी शिक्षा बहुत पराधीन है। स्वतन्त्रता का अभ्यास कर संकल्प को दृढ़ और जीवन को सशक्त बनाइये।

३२—वर्तमान शिक्षा के दोष

शिक्षा जीवन की उन्नति का साधन है। किन्तु वर्तमान शिक्षा में अनेक दोष हैं। दोषपूर्ण होने के कारण ही आज की विद्या निष्फल हो

रही है। वर्षों तक विद्यालयों में निरन्तर पढ़ने के बाद भी छात्रों में अच्छी योग्यता नहीं होती। उनकी बुद्धि, भाषा, विषय-ज्ञान आदि सभी अन्त तक दुर्बल रहते हैं। परीक्षा फल भी बहुत असन्तोष-जनक रहता है। अनेक छात्र परीक्षा में असफल रहते हैं। उत्तम श्रेणी बहुत दुर्लभ है। इसके मुख्य कारण वर्तमान शिक्षा प्रणाली के दोषों में खोजने चाहिएँ। छात्रों का केवल इतना ही दोष है कि वे इस दूषित शिक्षा प्रणाली में अपने उद्धार का मार्ग बनाने का यत्न नहीं कर रहे हैं। सच्ची शिक्षा व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है। वर्तमान शिक्षा छात्रों के व्यक्तित्व का ह्रास ही करती है। वह छात्रों में कोई शक्ति और गुण उत्पन्न होने का अवसर नहीं देती। स्वास्थ्य और चरित्र से तो वर्तमान शिक्षा का सम्बंध ही बहुत कम है। उसमें केवल विषय पढ़ाये जाते हैं। उन विषयों का ज्ञान भी छात्रों को अच्छा नहीं होता क्योंकि बुद्धि और मन का विकास भी छात्रों में समुचित नहीं होता। पराधीनता, दुर्बलता, पुस्तकें, रटना और परीक्षा वर्तमान शिक्षा प्रणाली के मुख्य दोष हैं। आरम्भ से ही ज्ञान को बालक की बुद्धि पर लादा जाता है। उसे 'पढ़ाया' जाता है। उनमें 'स्वयं पढ़ने' की शक्ति का विकास नहीं किया जाता। परिणाम यह होता है कि वह अन्त तक अध्यापकों का आश्रित बना रहता है। किसी विषय अथवा ग्रन्थ को स्वयं समझने की क्षमता उसमें अन्त तक नहीं आती। विद्यालय में पाँच घंटे पढ़ाई होती है, किन्तु घर पर दो चार घण्टे भी पढ़ने को नहीं मिलते। अध्यापक पढ़ाता है, छात्र केवल सुनता है, अपनी ओर से ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा उनमें आरम्भ से ही नहीं होती। पराधीनता के कारण छात्रों की बुद्धि और उनका व्यक्तित्व दोनों दुर्बल बनते हैं। उनमें साहस और क्षमता कम होती है। वर्तमान शिक्षा में पुस्तकें अधिक हैं, ज्ञान कम है। बुद्धि ज्ञान से भी कम है। पुस्तकों और विषयों के भार से बालक की बुद्धि आरम्भ से ही दब जाती है। विद्या का परिमाण बढ़ गया है। उसका विस्तार बहुत है। किन्तु

छात्रों में योग्यता और गुण बहुत कम हैं। ज्ञान और बुद्धि के विकास की अपेक्षा किसी प्रकार रटकर परीक्षा पास कर लेना शिक्षा का ध्येय रह गया है। परीक्षा के बाद अधिकांश ज्ञान विस्मृत हो जाता है। ऐसी शिक्षा से क्या लाभ है ?

३३—वर्तमान शिक्षा में पराधीनता

सच्ची शिक्षा बालकों और किशोरों की चेतना और उनके व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास है। ऐसी शिक्षा ही मनुष्य को समर्थ और सफलता के योग्य बनाती है। स्वतन्त्रता का अर्थ उच्छृङ्खलता नहीं, वरन् ऐसी चेष्टा है, जो मनुष्य के भीतर से अपने आप प्रकट होती है। जिसमें अच्छे और हितकर कार्यों को अपने आप करने की क्षमता है, वह स्वतन्त्र है। जिसमें अपनी ओर से बिना दूसरों के आदेश और अवलम्ब के पढ़ने, लिखने और समझने की शक्ति है, वह छात्र स्वतन्त्र है। स्वतन्त्रता का प्रमाण किसी कार्य के आरम्भ करने में सबसे अधिक मिलता है। जो अपनी ओर से किसी कार्य को अपने आप आरम्भ करने की चेष्टा रखता है, उसमें स्वतन्त्रता मौलिक रूप में विद्यमान है। कार्य के आरम्भ करने के बाद आवश्यक होने पर दूसरों से सहायता लेना उचित है। उस सहायता से कार्य को करते रहने में भी अपनी स्वतन्त्र चेष्टा प्रकट और पुष्ट होती है।

वर्तमान शिक्षा में स्वतन्त्रता का यह रूप बहुत मन्द है। छात्रों में पढने, लिखने, काम करने आदि की स्वतन्त्र चेष्टा बहुत कम दिखाई देती है। यह छात्रों का दोष नहीं है। आरम्भ से ही उनमें स्वतन्त्रता की भावना विकसित नहीं की जाती। आरम्भ से ही उनकी चेतना और बुद्धि को पराधीन बनाया जाता है। उन्हें अपने आप अपनी स्वतन्त्र चेष्टा से सीखने के लिए उत्साहित नहीं किया जाता। परिणाम यह होता है कि वे अपने आप कुछ भी पढ़-लिख नहीं सकते। आरम्भ से ही

पूछ २ कर पढ़ने की आदत पड़ जाती है। बिना पूछे अपने आप वे कुछ भी नहीं पढ़ लिख सकते। जो पढ़ाया जाता है उसे ही समझना कठिन होता है। किस प्रश्न का क्या उत्तर है, यह वे अध्यापकों से पूछते हैं। अपने आप समझने की चेष्टा उनमें नहीं होती। यह पराधीनता आगे चलकर इतनी बढ़ जाती है कि कॉलिजों के छात्र भी माता-पिता और अध्यापकों के बार बार कहने पर भी बहुत कम पढ़ाई का काम कर पाते हैं। पराधीनता से उनका उत्साह मन्द और उनकी चेष्टा शिथिल हो जाती है।

३४—वर्तमान शिक्षा में दुर्बलता

वर्तमान शिक्षा में पराधीनता का परिणाम दुर्बलता है। बुद्धि की स्वतन्त्र चेष्टा का अभ्यास करने से उसकी शक्ति बढती है। यह अभ्यास वर्तमान शिक्षा में आरम्भ से ही नहीं होता। अतः छात्रों की बुद्धि दुर्बल हो जाती है। उसमें तेज और उत्साह विकसित नहीं होते। बुद्धि के दुर्बल रहने के कारण विद्या सम्बन्धी अन्य कुशलतायें भी मन्द रहती हैं। दुर्बलता उत्साह और साहस को मन्द करती है। शक्ति से ही उत्साह और साहस विकसित होते हैं। इनके मन्द होने पर छात्रों में एक प्रकार का भय बना रहता है, जो उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व को हीन बनाता है तथा उनके समस्त जीवन का मूल्य कम करता है। योग्यता का विकास न होने के कारण छात्रों को ऐसी पुस्तकें भी कठिन मालूम होती हैं, जिन्हें स्वयं पढ़ने और समझने की शक्ति उनमें होनी चाहिये। कक्षा में प्रश्न पूछने अथवा प्रश्न का उत्तर देने का साहस उनमें नहीं होता। परीक्षा से भी वे डरते ही रहते हैं।

आप अपनी स्थिति को देखकर इस दुर्बलता का अनुमान लगा लीजिए। कितनी कठिन भाषा और कितने गहरे विचार समझने की

क्षमता आप रखते हैं ? क्या आप अपनी पाठ्य पुस्तकें अपने आप पढ़ने और समझने का साहस रखते हैं ? क्या आप पढ़ाई के सम्बन्ध में कक्षा में प्रश्न कर सकते हैं ? क्या आप अपने साथियों में पढ़ाई की बातें करते हैं ? पढ़ाई की बातों से अभिप्राय ऊपरी चर्चा से नहीं विषयों के विवेचन से है। क्या आप कक्षा में प्रश्नों का उत्तार देने के लिये उद्यत रहते हैं ? क्या आप परीक्षा के समय निर्भय और निश्चिन्त रहते हैं ? क्या आपको अच्छे परीक्षा-फल का विश्वास रहता है ? क्या आप दो चार पृष्ठ किसी विद्वान् को स्पष्ट स्वर से पढ़कर सुनाने का भी साहस रखते हैं ? यदि आपको दो चार पृष्ठ का लेख बोला जाय तो आप उसे शुद्ध भाषा में लिखने की क्षमता रखते हैं ? इन प्रश्नों पर विचार कर आप अपनी दुर्बलता का अनुमान लगा लीजिये। यदि आपको भ्रम हो, तो इन प्रश्नों को व्यवहार में लाकर अपनी शक्ति और क्षमता की परीक्षा कर लीजिये।

३५—वर्तमान शिक्षा में पुस्तकें

विद्या का अभ्यास भाषा एवं पुस्तकों के माध्यम से होता है। विद्या एक मानव सभ्यता की परम्परा है जो भाषा के माध्यम से ही बनती और बढ़ती है। पुस्तकों में वह भाषा लिपि के रूप में अंकित हो गई है। पुस्तकों में प्राचीन युग का ज्ञान सुरक्षित रहता है। इस दृष्टि से पुस्तकें मानव समाज की मूल्यवान निधि हैं। ये पुस्तकें शिक्षा में भी सहायक होती हैं। किन्तु शिक्षा का उद्देश्य बुद्धि का विकास है। जिससे पुस्तकों को पढ़ने समझने की क्षमता प्राप्त हो सके। पुस्तकों और विषयों के आरम्भ होने के पहले भाषा के समुचित ज्ञान एवं बुद्धि की शक्ति का विकसित होना आवश्यक है। इसके बिना पुस्तकें भार बन जाती हैं।

वर्तमान शिक्षा में यही दशा हो रही है। छोटी और ऊँची सभी कक्षाओं में छात्र पुस्तकों के भार से दबे जा रहे हैं। छोटी-छोटी

कक्षाओं में ही बालकों पर पुस्तकों और विषयों का भार लाद दिया जाता है। उनको भाषा का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता और विचार को समझने की क्षमता भी उनमें विकसित नहीं होती। किन्तु उनसे सामाजिक ज्ञान, सामान्य विज्ञान आदि समझने की आशा की जाती है। उनकी दशा उस पशु-शावक के समान होती है जिस पर शक्ति से अधिक बोझा लाद दिया जाये और उसे मार मार कर चलाया जाये। ऐसी दयनीय दशा छोटी कक्षा के छात्रों की है। बड़ी कक्षा के छात्रों की दशा भी उनसे भिन्न नहीं है। उन पर भी पुस्तकों और विषयों का अनावश्यक भार है, जिससे वे भी दब रहे हैं। भाषा और बुद्धि की दुर्बलता के कारण वे उन पुस्तकों को पूरी तरह न पढ़ सकते हैं और न समझ सकते हैं। इस संकट में न बुद्धि बढ़ती है, न ज्ञान बढ़ता है और न परीक्षाफल ही अच्छा रहता है। पुस्तकों और विषयों की अधिकता में शिक्षा की यह विड़म्बना कितनी शोचनीय है।

३६—वर्तमान शिक्षा में रटाई

भाषा और बुद्धि का समुचित विकास होने के पूर्व ही पुस्तकों तथा विषयों का भार आरम्भ हो जाने के कारण छात्र किसी भी कक्षा में अपनी पढ़ाई को सँम्हाल नहीं पाते। पुस्तकों और विषयों को समझने की शक्ति छात्रों में विकसित नहीं हो पाती। अतः उनके सामने एक ही चारा रह जाता है, वह है रटकर परीक्षा पास करना। आरम्भ से ही यह रटाई का क्रम चलने लगता है। यह रटाई भी समझ कर नहीं होती क्योंकि जिन चीजों को छात्र रटते हैं उनको वे समझते नहीं। समझने की योग्यता भी उनमें नहीं होती। अतः बिना समझे ही रट लेते हैं। सही गलत किसी भी तरह परीक्षा में लिख आते हैं। परीक्षा-

फल योग्यता और आत्मविश्वास पर निर्भर नहीं होता; वरन् भाग्य और संयोग पर निर्भर होता है।

रटाई का छात्रों की शिक्षा और उनके जीवन में अच्छा परिणाम नहीं होता। परीक्षा-फल भी अच्छा नहीं रहता। बुद्धि और ज्ञान में रटाई सबसे अधिक बाधक है। ऐसी शिक्षा में युवकों के जीवन का स्वर्णिम काल व्यर्थ नष्ट होता है। विना समझे रटाई का भार किशोर अवस्था की स्वतंत्रता, प्रसन्नता और सुन्दरता को कुचल देता है; परीक्षा से भयभीत छात्र सदा मन में दबे रहते हैं, जिन्हें किशोर काल में, सिंह के समान स्वच्छन्द और निर्भय होना चाहिये। किशोर अवस्था में स्मरण शक्ति कुछ अच्छी होती है, किन्तु विना समझे रटाई करना स्मरण शक्ति का दुरुपयोग है यह दुरुपयोग बुद्धि को क्षीण बनाता है। रटाई में व्यतीत होने वाले अनमोल वर्ष व्यर्थ जाते हैं और समस्त श्रम भी निष्फल जाता है, क्योंकि परीक्षा के बाद रटी हुई बातें अल्पकाल में ही भूल जाती हैं। इतनी निष्फल और हानिकारक होते हुए भी दुर्बल छात्रों की विवशता के कारण वर्तमान शिक्षा में रटाई की परम्परा ही अधिक चल रही है।

३७—वर्तमान शिक्षा में परीक्षा

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है। स्वास्थ्य, विद्या, चरित्र और कार्यकुशलता के चतुर्मुख विकास से ही शिक्षा पूर्ण होती है। इनके स्थान पर परीक्षा ही वर्तमान शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य बन गई है। किसी प्रकार परीक्षा पास कर लेना छात्रों का प्रमुख लक्ष्य रहता है। रटाई इस लक्ष्य का प्रचलित साधन है। बुद्धि, भाषा और योग्यता का

समुचित विकास न होने के कारण अधिकांश छात्र पाठ्य पुस्तकों को तो समझ नहीं पाते। वे कुछ चुने हुये प्रश्नों के उत्तर सहायक पुस्तकों से रट लेते हैं। यदि उनमें से कुछ प्रश्न परीक्षा में आ जाते हैं तो तृतीय श्रेणी में पास हो जाते हैं अन्यथा अगले वर्ष भाग्य परीक्षा करते हैं। परीक्षा में उत्तीर्ण होने और अच्छी श्रेणी प्राप्त करने के कुछ ऐसे भी ढंग चल पड़े हैं जो अनुचित हैं तथा शिक्षा के साथ साथ हमारे देश के पतन का भी कारण बन रहे हैं।

वर्तमान शिक्षा में परीक्षा का लक्ष्य इतना प्रधान बन गया है कि बुद्धि के विकास, ज्ञान के उपार्जन, चरित्र के निर्माण आदि का कोई महत्व नहीं रह गया है। परीक्षा की वर्तमान प्रणाली में बुद्धि और ज्ञान की सही सही परीक्षा भी नहीं हो पाती। मौखिक परीक्षा में प्रश्नों का विवेचन करने से सही सही अनुमान लग सकता है कि कौन किस विषय को कितना समझता है। किन्तु इसे अव्यावहारिक और अविश्वसनीय समझा जाता है। बुद्धि की दुर्बलता के साथ साथ परीक्षा की प्रणाली भी रटाई की प्रथा के लिये उत्तरदायी है। रटा हुआ परीक्षा में आँख बन्द कर लिखा जा सकता है। किन्तु रटकर कोई किसी प्रश्न का विवेचन नहीं कर सकता। वर्तमान परीक्षा का एक वर्ष, दो वर्ष अथवा तीन वर्ष के अन्त में एक बार होना भी असाधारण है। तीन तीन घण्टे के प्रश्न पत्रों में परीक्षाओं में छात्र जितना लिखते हैं उतना वे समस्त जीवन में नहीं लिखते। यह भी असाधारण है। इस असाधारण परीक्षा का भूत सा छात्रों के सिर पर चढ़ा रहता है। परीक्षा समाप्त होने पर रटा हुआ विषय भूल जाता है। छात्र परीक्षाएें पास करते चले जाते हैं किन्तु उनके अनुरूप उनकी योग्यता नहीं बढ़ती। परीक्षा का यह असाधारण रूप अनुचित महत्व शिक्षा में योग्यता की उपेक्षा का कारण बनकर एक निष्फल श्रम की दिशा में छात्रों को भ्रमित कर रहा है।

३८–आपकी दुर्बलताएँ

शिक्षा प्रणाली के इन दोषों से छात्रों में जो दुर्बलताएँ उत्पन्न होती हैं वे दयनीय हैं। शिक्षा की पूर्ण परिभाषा के अनुसार आप परखिए कि आपकी शिक्षा कितनी पूर्ण अथवा अपूर्ण है। स्वास्थ्य, विद्या और चरित्र इन तीनों पक्षों की दृष्टि से आपके व्यक्तित्व का विकास कितना हुआ है अथवा हो रहा है ? बुद्धि, ज्ञान, भाषा, लिपि, विषय, स्मरण, परीक्षा, तर्क, विवेक आदि विद्या के अनेक अंगों की दृष्टि से आपकी विद्या कितनी सफल है, इसका भी अनुमान कीजिए। आप छात्र हैं, नवयुवक हैं। यौवन में जो तेज और बल मनुष्य के शरीर में उमड़ता है, वह आप में कितना है। अधिकांश छात्रों के शरीर दुर्बल और मुख-मण्डल निस्तेज दिखाई देते हैं। स्वास्थ्य की दुर्बलता के लिए आप जमाने को दोष दे सकते हैं कि आपको शुद्ध और पौष्टिक भोजन नहीं मिलता। किन्तु तेजहीनता का कुछ दोष आपके ऊपर भी है। शुद्ध चरित्र और उज्ज्वल विचारों से दुर्बल मनुष्य के मुख पर भी तेज रहता है।

विद्या और चरित्र की दृष्टि से भी आपकी शिक्षा सन्तोषजनक नहीं है। चरित्र तो हमारे स्वतन्त्र देश की राष्ट्रीय समस्या है और उसकी हीनता के कारण हमारा देश उन्नति के मार्गों में आगे नहीं बढ़ रहा है। किन्तु आपकी विद्या भी दुर्बल है। आपकी विद्या के सभी अंग क्षीण हैं। कितने ऊँचे स्तर की पुस्तकों को आप समझ सकते हैं, इससे आप अपनी बुद्धि और भाषा के विकास का अनुमान लगाइए। अधिकांश छात्रों को पाठ्य पुस्तकें ही कठिन मालूम होती हैं, अन्य ऊँचे ग्रन्थों की तो बात ही क्या है। लिपि की स्वच्छता और सुन्दरता का महत्व आज के छात्र बहुत कम जानते हैं। अधिकांश छात्रों का हस्तलेख देखने में कुरूप होता है और कठिनता से पढ़ने में आता है। जिन

विषयों को आप पढ़ते हैं, उनमें आपकी कितनी गति है ? उनकी गहराइयों को आप कितना समझते हैं ? आपका परीक्षाफल कैसा रहता है ? आप किस श्रेणी में पास होते रहे हैं ? इन सब बातों का विचार कर अपनी शिक्षा की दुर्बलताओं का अनुमान कीजिए और उन्हें दूर करने का प्रयत्न कीजिए ।

३९–दुर्बलता या दुर्भाग्य

आपकी शिक्षा की दशा दयनीय है । यदि आप एक अच्छे विद्यार्थी हैं और आपका परीक्षाफल उत्तम रहता है तो आप भाग्यशाली हैं । आपको अपने पर गर्व होना चाहिए । आपके माता-पिता को तथा देश को भी आप पर गर्व होगा । किन्तु यदि आप एक श्रेष्ठ और योग्य विद्यार्थी नहीं हैं, तो यह आपकी दुर्बलता अवश्य है । किन्तु साथ ही आपका दुर्भाग्य भी है । यदि आपकी बुद्धि अधिक तीव्र नहीं है अथवा आपकी भाषा-शक्ति प्रबल नहीं है, यदि आप पुस्तकों को समझने में कठिनाई का अनुभव करते हैं अथवा अच्छी भाषा में प्रश्नों के उत्तर नहीं लिख सकते तो इसका प्रकट कारण यह है कि आपकी भाषा शक्ति और विचार शक्ति का उचित विकास नहीं हो सका है । इसमें कुछ आपका दोष है, किन्तु आरम्भ में यह दोष आपके गुरुजनों का था, जो आप में भाषा और विचार की शक्ति संचारित न कर सके ।

कोई भी बालक जन्म से ही अयोग्य अथवा दुर्बल नहीं होता । बुद्धि और भाषा की शक्ति का विकास बचपन की प्रेरणा और बचपन के अभ्यास से होता है । बचपन में सभी नादान होते हैं । कोई बालक स्वयं नहीं समझ सकता कि उसे क्या करना चाहिए

और कैसे करना चाहिये। जो आज योग्य दिखाई देते हैं, वे माता-पिता गुरुजनों आदि के सम्पर्क से प्रेरणा पाकर अपने उद्योग से योग्य बने हैं। उन्हें ऐसी प्रेरणा मिली, यह उनका सौभाग्य है। वे इस प्रेरणा के द्वारा उन्नति के मार्ग पर बढ़ सके यह उनकी सचेष्टता है। किन्तु जो अयोग्य और दुर्बल हैं, उनकी अयोग्यता और दुर्बलता का कारण यह है कि उन्हें किसी के सम्पर्क से प्रकाश और प्रेरणा नहीं मिल सके। इस दुर्बलता का दोष गुरुजनों पर अधिक है। किन्तु इससे हानि सबसे अधिक आपको है। इसलिए आप अपनी चेष्टा के द्वारा अपनी दुर्बलताएँ दूर करने का प्रयत्न कीजिये। दूसरों का दोष आपका दुर्भाग्य बना, अब आपका उद्योग आपका सौभाग्य बन जायेगा।

४०—दुर्बलताओं के कारण

आपके जीवन के विकास में, और विशेषतः आपकी शिक्षा अथवा विद्या में, जो दुर्बलताएँ हैं, उनके अनेक कारण हैं। वस्तुतः इसमें आपका दोष कम है और दुर्भाग्य अधिक है। मनुष्य का बालक अत्यन्त असमर्थ और नादान होता है। माता-पिता और गुरुजनों के सम्पर्क एवं शिक्षण से जैसे संस्कार उसे बचपन से मिलते हैं, उन्हीं के अनुरूप उसका विकास होता है। उन संस्कारों से ही उसकी बुद्धि का विकास और उसके चरित्र का निर्माण होता है। समाज का वातावरण और शिक्षा की प्रणाली भी इसमें अपना प्रभाव रखते हैं। हमारे समाज का वातावरण अच्छा नहीं है। उसमें अनेक दोष हैं। आरम्भ से ही बालक समाज के सम्पर्क में आता है और समाज के दोष वह भी सीख लेता है। दोषों का प्रभाव गुणों से अधिक होता है। हमारी शिक्षा प्रणाली भी अनेक दोषों से पूर्ण है। छात्रों की शिक्षा अथवा विद्या में जो दुर्बलताएँ हैं, उनका एक प्रधान

कारण हमारी शिक्षा प्रणाली है। यह दूषित शिक्षा प्रणाली आरम्भ से ही आपकी विद्या को इतना दुर्बल बना देती है कि ऊँची कक्षाओं में आकर विद्याध्ययन आपके लिए एक भार और संकट बन जाता है।

पढ़ना, लिखना और समझना विद्या के बाहरी अंग हैं। विषयों का ज्ञान विद्या की बाहरी सम्पत्ति है। बुद्धि का विकास विद्या की आन्तरिक शक्ति है। बुद्धि का विकास और ज्ञान का प्रकाश शिष्य की चेतना के साथ गुरु की चेतना के निकट सम्पर्क से होता है, जैसे जलते हुए दीपक के निकट सम्पर्क से एक दूसरा दीपक जलता है। गुरु के इस निकट सम्पर्क का हमारी शिक्षा प्रणाली में कोई स्थान नहीं है। यह निकट सम्पर्क तभी सम्भव है, जबकि दो चार शिष्य एक गुरु के चरणों में बैठ कर विद्याध्ययन करें। आज की कक्षाओं की भीड़भाड़ में यह सम्भव नहीं है। भीड़ में गुरु अपने शिष्यों से अलग और दूर रहता है। उन्हें पढ़ाता-सिखाता है किन्तु उनकी चेतना में गुरु की चेतना का संचार नहीं होता। इसीलिये आरम्भ से ही विद्यार्थियों की बुद्धि विकसित नहीं होती। बुद्धि के विकसित न होने के कारण आगे की समस्त शिक्षा दुर्बल रहती है। निकट सम्पर्क न होने के कारण भाषा और लिपि को भी विद्यार्थी अच्छी तरह नहीं सीख पाते। पाठ्य विषयों का ज्ञान भी दुर्बल रहता है। इन दुर्बलताओं के कारण ऊँची कक्षाओं की शिक्षा भार बन जाती है।

४१–दुर्बलताएँ कैसे दूर हों ?

दुर्बल जीवन निष्फल है। उसमें कोई उत्तम लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता है। दुर्बल विद्या भी निष्फल है, क्योंकि उसके

द्वारा आपको जीवन में अच्छी सफलता नहीं मिल सकती। अत: दुर्बलताओं का दूर करना आवश्यक है। दुर्बलताओं का दूर करना कठिन है, किन्तु प्रयत्न करने पर वह भी सरल हो जाता है। आपकी दुर्बलताएँ अपने उद्योग से ही दूर हो सकती हैं। दूसरों के प्रयत्न उसमें बाहरी सहायता दे सकते हैं। किन्तु यह भी उनकी इच्छा पर निर्भर है। यदि आपके माता-पिता आपके जीवन के विकास के लिए और आपकी शिक्षा की उन्नति के लिए कुछ उद्योग कर सकते तो आपकी विद्या में ये दुर्बलताएँ आज न होतीं। यदि कोई अच्छा गुरु अपनी सजग चेतना का प्रेरणा-पूर्ण सम्पर्क देकर आपकी बुद्धि को जागरित करता और आपकी योग्यता को निखारता तो आज आपकी विद्या इतनी तेजस्वी होती कि उस पर आपको गर्व होता। किन्तु यह सब न हो सका। यह बहुत कठिन है। माता-पिता से अधिक आपका हितचिन्तक कौन है? जो माता-पिता स्वयं शिक्षित नहीं हैं, वे अपनी सन्तान की शिक्षा में योग नहीं दे सकते। किन्तु जो माता-पिता शिक्षित हैं, वे अपनी सन्तान की शिक्षा में कितना योग देते हैं? आपके माता-पिता ने आपको सिखाने-पढ़ाने में कितना समय दिया है? उन्होंने आपको चरित्र के कितने गुण सिखाए हैं?

यदि माता-पिता स्वयं जिन बालकों की शिक्षा में समय और ध्यान नहीं दे सकते, तो उनकी शिक्षा में दूसरे लोग कितना ध्यान दे सकते हैं? दूसरे की विद्या और बुद्धि के विकास में योग देने के लिए कितना आत्मीय प्रेम, कितनी सहिष्णुता, कितना ध्यान और कितना श्रम अपेक्षित है तथा यह सब कितना कठिन है। यह जानना चाहते हैं, तो आप थोड़े दिन ही स्वयं किसी को कुछ पढ़ा-सिखा कर देख लीजिए। ऊँची कक्षाओं की पढ़ाई में सहायता देने की योग्यता बहुत कम माता-पिता रखते हैं। अत: आपकी विद्या की दुर्बलताएँ आपके अपने उद्योग तथा गुरु की कृपा से ही दूर हो सकती हैं। आप अपना उद्धार स्वयं कीजिए।

अभ्यास और अध्यवसाय से ही आपकी विद्या की दुर्वलताएँ दूर हो सकती हैं। सेवा के द्वारा गुरु को प्रसन्न कर उनकी सहायता और प्रेरणा प्राप्त कर सकें तो आपकी विद्या और भी अधिक उज्ज्वल होगी।

४२—उद्धार का मार्ग

आपकी विद्या की दुर्वलता पुराने रोग के समान वहुत दिन तक चिकित्सा करने से दूर होगी। आपको इसके लिए दीर्घकाल तक तत्परतापूर्वक उद्योग करना होगा। इस दुर्वलता से सबसे अधिक हानि आपके जीवन की है। अत: आपको इसके विषय में सबसे अधिक चिन्तित होने की आवश्यकता है। आपके माता-पिता की चिन्ताएँ आपको उद्धार के वाहरी साधन दे सकती हैं। वे आपको पढ़ाने के लिये घर पर अध्यापक लगा सकते हैं, किन्तु स्वयं आपकी पढ़ाई में सहायता नहीं कर सकते। अध्यापकों की सहायता से आपकी दुर्वलता कितनी दूर हो रही है और आपकी योग्यता में कितनी उन्नति हो रही है, इसका अनुभव आप स्वयं कर लीजिये। आज के अध्यापक आपके और सरकार के नौकर हैं। नौकर से आप कितनी आशा कर सकते हैं। नौकर सेवा दे सकता है किन्तु मन नहीं दे सकता। मन को धन से नहीं खरीदा जा सकता। मन को मन से ही अनुकूल वनाया जा सकता है। वड़ा वेतन पाकर भी अध्यापक आपके लिए वह नहीं कर सकता, जो प्राचीनकाल में गुरु अल्प सेवा से प्रसन्न होकर अपने शिष्य के लिए करते थे। आज भी गुरु की सहायता सेवा द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

अस्तु आपका उद्योग और गुरु की कृपा दो ही आपके उद्धार के मार्ग हैं। इनके द्वारा ही आपकी विद्या की दुर्वलताएँ दूर हो सकती हैं।

वस्तुतः ये दो मार्ग नहीं वरन् एक ही मार्ग के दो किनारे हैं। दोनों के सहयोग से आपकी दुर्बलता सुगमता से दूर होगी, जिस प्रकार कि रोगी की शक्ति और उत्तम औषधि के सहयोग से भीषण रोग भी शीघ्र दूर होता है। आपका उद्योग आपकी शक्ति है। गुरु की कृपा ज्ञान की महौषध है। गुरु विद्या की पारसमणि है। उनकी तेजस्वी चेतना के स्पर्श से आपकी चेतना भी चमक उठेगी। उनकी आत्मा के दीपक से आपकी चेतना का दीपक भी चमक उठेगा। किन्तु यह सम्पर्क और सौभाग्य भी आपको अपने यत्न से ही मिलेगा। इसके लिए भी आपको ही उद्योग करना होगा। समाज में आज अध्यापक का आदर नहीं है। अतः आज का अध्यापक कुण्ठित और खिन्न है। वह पेट के लिए अध्यापन का कार्य करता है किन्तु मन से आपकी योग्यता बढ़ाने का उत्साह उसमें नहीं है। आपको सेवा और सत्कार से उसमें यह उत्साह उत्पन्न करना होगा। गुरु की करुणा के प्रकाश में विद्या की साधना करने से आपकी सभी दुर्बलताएँ दूर होंगी और आपको श्रेष्ठ विद्या प्राप्त होगी।

४३–सोचो, समझो और करो

आपके उद्धार का मार्ग तभी सफल होगा जब आप उस पर अपने चरण बढ़ाएँगे। मार्ग पर चरण बढाने के लिये प्रकाश और प्रयत्न की आवश्यकता है। अन्धकार में कोई चल नहीं सकता। प्रकाश होने पर भी चलने के लिये प्रयत्न करना होगा। अन्धकार बाहरी और भीतरी दोनों प्रकार का होता है। बाहरी प्रकाश होने पर भी हम भीतरी प्रकाश से ही देखते हैं। भीतरी अन्धकार हमारी दृष्टि का मन्द होना है। अन्धा रोशनी में भी रास्ता नहीं देख सकता। दूसरी ओर शेर, बिल्ली आदि जिन पशुओं की आँखों में अधिक प्रकाश होता है

वे अन्धेरे में भी चल सकते हैं। उनकी आँखों की ज्योति उनके मार्ग को प्रकाशित करती है। अपने जीवन और अपनी विद्या के उद्धार के मार्ग पर चलने के लिये आपको प्रयत्न तो करना ही होगा, साथ ही ज्ञान के प्रकाश को भी जानना होगा। केवल प्रयत्न से आप आगे चल सकते हैं, किन्तु आप किधर चल रहे हैं और आपको किधर चलना चाहिये यह भीतरी प्रकाश के द्वारा ही जान सकते हैं। दृष्टि के प्रकाश से ही मार्ग की दिशा निश्चित होती है। ज्ञान के प्रकाश से ही हम विद्या के क्षेत्र में अपने उद्योग की दिशा समझ सकते हैं।

विद्या की दुर्बलताएँ दूर करने के लिये भी ज्ञान की आवश्यकता है। उन दुर्बलताओं का ज्ञान होने पर ही आप उन्हें दूर करने का प्रयत्न करेंगे। दूर करने के उपायों को भी जानना होगा। यही तो कठिनाई है कि अज्ञान के दूर करने से लिये भी अज्ञान का ज्ञान अपेक्षित है। जब आपको अपनी दुर्बलता का ज्ञान ही नहीं है तो उन्हें दूर करने का प्रयत्न कैसे करेंगे? यूनान के दार्शनिक सुकरात को जब देवताओं ने ग्रीस का सबसे बड़ा ज्ञानी बताया तो लोग सुकरात के पास पहुँचे और उनकी श्रेष्ठता का कारण पूछने लगे। सुकरात ने कहा "कोई ज्ञानी नहीं है। सभी मूर्ख हैं। अन्तर इतना ही है कि मैं जानता हूँ कि मैं अज्ञानी हूँ। आप इतना भी नहीं जानते कि आप अज्ञान हैं।" अज्ञान का ज्ञान होना सबसे बड़ा ज्ञान है। उसी से ज्ञान का उद्योग आरम्भ होता है। अपनी दुर्बलताओं को पहचानिए। उनके कारणों की खोज कीजिए। उनको दूर करने के उपाय अपनाइए अपनी स्थिति पर विचार कीजिए और उसे सुधारने का प्रयत्न कीजिए।

४४—चिनगारी जगाइए

अज्ञान का ज्ञान कठिन है। दुर्बलताओं को जानना मुश्किल है। किन्तु दूसरी ओर मनुष्य की आत्मा में चेतना की ऐसी अदम्य चिनगारी है जो

किसी प्रकार भी बुझ नहीं सकती। मनुष्य की चेतना ऐसा सूर्य है, जिसका प्रकाश अज्ञान के बादलों में भी पूर्णतः लुप्त नहीं हो सकता। आपकी विद्या दुर्बल है। उसमें अनेक दोष हैं। फिर भी आपकी आत्मा में ज्ञान की वह आभा अन्तर्निहित है, जिसके प्रकाश में आप इन दुर्बलताओं और दोषों को पहचान सकते हैं। यही चेतना की वह चिनगारी है, जो किसी प्रकार भी बुझ नहीं सकती, यद्यपि वह परिस्थिति की धूल से दब रही है। विद्या के खुले वातावरण में आइये, तो उसकी खुली हवा से यह धूल उड़ेगी और यह चिनगारी चमक उठेगी। आवश्यक समिधा और सामग्री होने पर इस चिनगारी से ही आप विद्या के महान यज्ञ को सम्पन्न कर सकते हैं। यही चिनगारी ज्योतित होकर आपके जीवन का सूर्य बन सकती है।

अपने से योग्य जनों का सम्पर्क विद्या का वह खुला वातावरण है, जिसमें चलने वाली ज्ञान की वायु अज्ञान की धूल को उड़ाकर आपकी चेतना की चिनगारी को चमकाएगी। अन्धों में काना भी सरदार बन जाता है। एक आंख का दोष होने पर भी वह अन्धों से अच्छा है, किन्तु दो आँखों वालों के बीच वह कितना कुरूप लगता है। इसी प्रकार अपने से अधिक योग्य लोगों के बीच बैठने और बात करने से ही यह ज्ञान हो सकता है कि आपके ज्ञान में क्या दोष है तथा आपकी विद्या में क्या कमियाँ हैं। योग्य गुरु का सम्पर्क एक कसौटी का काम करता है। उनसे विद्या सीखने के साथ साथ हम उनकी विद्या के गुणों से तुलना करके अपनी विद्या के दोषों को भी जान सकते हैं। जो विद्या और बुद्धि में आपसे श्रेष्ठ हैं, वे गुरु के ही तुल्य हैं। उनका जितना अधिक सम्पर्क आपको मिल सके, उतना ही लाभप्रद है। अच्छे ग्रन्थों के लेखकों से भी हम यह लाभ उठा सकते हैं, यदि हम उन ग्रन्थों के गुणों के प्रकाश में अपनी विद्या के दोषों को देख सकें। अपने साथियों और अपने से छोटी कक्षाओं के

विद्यार्थियों को पढ़ाने पर भी आपको अपनी दुर्बलताएँ प्रकट हो सकती हैं ।

४५–गुरुओं की खोज कीजिए

उत्तम विद्या प्राप्त करने के दो मुख्य साधन हैं—आपका प्रयत्न और योग्य गुरुओं की प्रेरणा । आप अपने को सजग और सक्रिय बनाइये । जाग्रत और सचेष्ट होकर आपकी चेतना विकास की ओर अभिमुख होगी । किन्तु आपकी चेतना का यह जागरण और प्रयत्न तभी पूर्ण रूप से सफल होगा, जब आपको योग्य गुरुओं की प्रेरणा एवं सहायता प्राप्त होगी । अपने प्रयत्न से भी आप अपनी योग्यता बढ़ा सकते हैं और विद्या के विषयों को अधिक गहराई से समझ सकते हैं । किन्तु गुरुओं की प्रेरणा से आपको अधिक लाभ होगा; आपके प्रयत्न एवं परिश्रम का फल अधिक होगा । अतः आप योग्य गुरुओं की खोज कीजिये । अनेक अध्यापक आपको अनेक विषय पढ़ाते हैं । प्रतिवर्ष आप नई कक्षा में चढ़ते जाते हैं । नये नये अध्यापक आपको पढ़ाते हैं । इन अध्यापकों में ही आप योग्य गुरुओं की खोज कीजिये ।

आप कहेंगे कि ये सब अध्यापक हमें पढ़ाते हैं, ये हमारे गुरु हैं ही । फिर इनको खोजने का क्या प्रश्न है ? ये अध्यापक तो हमें बिना खोजे ही मिलते हैं । फिर इन्हें खोजने का क्या अर्थ है ? गुरुओं को खोजने का अर्थ आप सहज ही समझ सकते हैं, यदि आप इस बात पर विचार करें कि इन अध्यापकों से आपको कितनी प्रेरणा मिलती है, इनके साथ आपका कितना निकट सम्पर्क है । अध्यापक कक्षाओं में दूर से आपको पढ़ाते हैं । उनसे न आपका व्यक्तिगत सम्पर्क होता है और न आपकी चेतना को प्रेरणा मिलती है । आत्मीय सम्बन्धी और निकट सम्पर्क होने पर ही इनसे आपकी चेतना को प्रेरणा मिल सकती है । तभी ये अध्यापक गुरु

बन सकते हैं। अपनी बुद्धि को विकसित और विद्या को तेजस्वी बनाने के लिए अपने इन अनेक अध्यापकों में से गुरुओं की खोज कीजिये। उनके साथ निकट सम्पर्क स्थापित कीजिये।

४६–गुरुओं के पास जाइए

वर्तमान शिक्षा की आलोचना करते हुए कई बार यह कहा जाता है कि इसका सबसे बड़ा दोष अध्यापकों और छात्रों में निकट सम्पर्क का अभाव है। इस सम्पर्क के न होने के कारण छात्रों को अध्यापकों से ज्ञान और अनुशासन की आन्तरिक प्रेरणा नहीं मिलती। यह बिल्कुल सत्य है। किन्तु इस दोष को दूर करने का उपाय क्या है? अध्यापकों और छात्रों का सम्पर्क कैसे स्थापित हो सकता है। कुछ लोग इस सम्पर्क को अध्यापकों का कर्तव्य बताते हैं। कई राज्यों की सरकारों ने अध्यापकों को आदेश दिया है कि वे छात्रों और उनके अभिभावकों से निकट सम्पर्क स्थापित करें, जिससे विद्यालयों के अनुशासन में सुधार हो। इन सरकारों का यह विचार इसलिए है कि ये शिक्षा की समस्या को अनुशासन की दृष्टि से देखती हैं और अनुशासन की स्थापना को अध्यापकों का कर्त्तव्य समझती हैं।

वस्तुतः अनुशासन की शिक्षा बचपन में माता-पिता के द्वारा मिलनी चाहिये। विद्यालयों का मुख्य कार्य विद्या है, अनुशासन नहीं। यह विद्या छात्रों को उत्तम और उज्ज्वल रूप में प्राप्त हो, इसके लिये भी अध्यापकों और छात्रों को निकट सम्पर्क वाञ्छनीय है। किन्तु यह सम्पर्क छात्रों का कर्तव्य है। इस सम्पर्क से छात्रों को ही अधिक लाभ होगा। अतः उनको ही यह सम्पर्क अपनी ओर से स्थापित करना चाहिये। इस सम्पर्क के न होने से छात्रों की ही हानि है। उनकी विद्या में ही दोष और दुर्बलताएँ रह जाती हैं। अध्यापकों की कोई हानि नहीं है। इस

सम्पर्क से अध्यापकों की अपेक्षा छात्रों को ही अधिक लाभ है। अतः उनको ही अपनी ओर से अध्यापकों से सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिये।

४७–गुरु कौन है ?

आपके सभी अध्यापक आप से अधिक योग्य हैं। वे भाषा, साहित्य तथा विषयों का ज्ञान आपसे अधिक रखते हैं। जीवन का अनुभव भी उनको आपसे अधिक है। अतः वे जीवन और शिक्षा दोनों की समस्याओं के सम्बन्ध में आपकी सहायता कर सकते हैं। आपके लिए वे सभी गुरु के समान हैं। आप उन सबका आदर करें और उनसे प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयत्न करें। किन्तु उनसे यह प्रेरणा आप तभी प्राप्त कर सकते हैं जब आप उन्हें अपना गुरु बनाएँ। आपको कक्षा में पढाने वाले प्रत्येक अध्यापक को आपका गुरु नहीं कहा जा सकता। शिष्टाचार के लिए आप सभी अध्यापकों को अपना गुरु कह सकते हैं। आपको उन सबका आदर करना चाहिये। किन्तु अध्यापक और गुरु में फिर भी अन्तर है। अध्यापक केवल पढ़ाने वाले को कहते हैं। प्राचीन-काल में अध्यापक को 'उपाध्याय' कहते थे। गुरु आपका पथ-प्रदर्शक और हितचिन्तक भी है।

गुरु का कार्य अध्यापन अर्थात् केवल पढ़ाने से अधिक है। अध्यापन का सम्बन्ध थोड़े समय का सम्बन्ध है। किन्तु गुरु का सम्बन्ध जीवन भर का सम्बन्ध है। गुरु का सम्बन्ध अधिक गहरा और निकट का सम्बन्ध है। गुरु केवल अध्यापन ही नहीं करता, वह आपके जीवन का पथ-प्रदर्शन भी करता है। अध्यापक का पढ़ाना बाहरी विद्यादान है। गुरु का विद्यादान भी अधिक गम्भीर और मर्म पूर्ण होता है। गुरु विद्या के भीतरी रहस्यों को बताता है और विद्या

के साथ प्रेरणा भी देता है। गुरु की प्रेरणा से विद्या तेजस्वी बनती है। ज्ञान के अतिरिक्त गुरु आपके जीवन का उत्थान भी करता है। गुरु की विद्या महान होती है, किन्तु उनका चरित्र भी श्रेष्ठ और अनुकरणीय होता है। आचार का आदर्श होने के कारण गुरु को आचार्य कहते हैं। गुरु आपके आचरण का आदर्श है।

४८—गुरु बनाइए

आपके सभी अध्यापक गुरु बनने योग्य हैं। उन सबके पास विद्या का इतना भण्डार है कि उसमें से आपको बहुत कुछ मिल सकता है। उनमें चरित्र के भी बहुत से गुण हैं। आप उनसे गुण सीखकर अपने चरित्र को भी उत्तम बना सकते हैं। विद्या और चरित्र का तेज सूर्य के समान होता है। वह दूर से भी प्रभावित करता है। आप दूर से भी अपने अध्यापकों को देखकर उनसे ज्ञान का प्रकाश और चरित्र की प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं। किन्तु यह इसी प्रकार होगा जैसे आप थोड़ी देर के लिए प्रकाश में जाकर सूर्य के तेज का सेवन करें अथवा अंजली में लेकर वर्षा का जल पान करें। इसके स्थान पर यदि आप घर ही ऐसा बनाएँ जिसमें बहुत समय तक सूर्य का प्रकाश आता रहे तो आपके जीवन का वातावरण ही अधिक स्वास्थ्य-कारक बन जायगा। यदि आप नदी अथवा कूप के किनारे ही घर बनाएँ तो आप इच्छानुसार जलपान कर सकते हैं। योग्य अध्यापकों को गुरु बनाना सूर्याभिमुख घर के समान पूर्णतः हितकारक है।

अपने जीवन को उन्नत और अपनी विद्या को श्रेष्ठ बनाने के लिये आप कक्षा में होने वाले दूर के अध्यापन से ही सन्तुष्ट न रहें। योग्य अध्यापकों से आत्मीय और निकट का सम्बन्ध स्थापित करें। अभिप्राय यह है कि आप उन्हें गुरु बनाएँ। कक्षा में आप उनसे दूर रहते हैं। वे

एक छात्र-समूह को तटस्थ भाव से पढ़ाते हैं जिनमें आप भी एक हैं। उनमें आपके अथवा किसी अन्य के प्रति उनका कोई व्यक्तिगत भाव नहीं है। सामूहिक शिक्षा स्वरूप और प्रणाली की दृष्टि से कुछ ऐसी ही निर्वैयक्तिक है। उसमें व्यक्तिगत सम्बन्धों के बनने का अवसर नहीं है। अध्यापकों के साथ गुरु-शिष्य का सम्बन्ध बनाने के लिए आपको उनके पास जाना होगा। सेवा और सत्कार के द्वारा उन्हें प्रसन्न कर उनकी कृपा और करुणा प्राप्त करनी होगी। गुरु को आप से कोई लाभ नहीं लेना है, आपको ही गुरु के सम्बन्ध एवं सम्पर्क से अपना जीवन एवं ज्ञान उन्नत बनाना है। अतः आपको ही अपनी ओर से गुरु बनाने का प्रयत्न करना होगा।

४९—गुरु की सेवा कीजिए

विनय शिष्य का गुण है, किन्तु सेवा शिष्य का कर्म है। वस्तुतः वह शिष्य का धर्म है। विनय शिष्य को गुरु की कृपा और करुणा का अधिकारी बनाती है। किन्तु सेवा से प्रसन्न होकर ही गुरु की कृपा-दृष्टि होती है। गुरु के प्रति श्रद्धा और विनय का भाव रखने के साथ गुरु की सेवा भी कीजिए। गुरु के सम्पर्क और उनकी कृपा से आपको जो विद्या की उन्नति का लाभ होगा, उसका मूल्य आप सेवा के रूप में ही दे सकते हैं। विद्या अनमोल है। वह धन से नहीं खरीदी जा सकती। आधुनिक व्यवस्था में विद्या का मूल्य धन समझा जाता है। इसीलिए विद्या इतनी दीन हो रही है। विद्या का जो रूप आज धन से बिक रहा है वह नकली और निष्प्राण है। उसमें विद्या की आत्मा नहीं है। विद्या का मर्म आत्मा के तेज में है। प्रसन्न होकर ही गुरु अपनी स्वतन्त्र इच्छा से अपनी प्रतिभाशील आत्मा का तेज शिष्य की आत्मा में प्रसारित करते हैं। धन से उनके मन को नहीं खरीदा

जा सकता। धन के बदले विद्वान् गुरु विद्या की कुछ ऊपरी बातें सिखा सकते हैं। ये बातें विद्या के सागर के शंख-सीप हैं, रत्न और मोती नहीं। रत्न और मोती तो गुरु के ज्ञान-सागर में श्रद्धा, विनय और सेवा द्वारा गहराई तक प्रवेश करने वाला ही प्राप्त कर सकता है।

आजकल के छात्र गुरु की सेवा को अपना अपमान समझते हैं। जनतन्त्र में सब समान हैं। एक नागरिक के नाते शिष्य का अधिकार गुरु से कम नहीं। छात्रों में यह समानता का दम्भ इस सीमा तक बढ़ गया है कि वे अध्यापकों का अपमान करते हैं। इसमें वे गर्व का भी अनुभव करते हैं। आजकल छात्रों के माता-पिता भी अध्यापक के प्रति सम्मान का भाव नहीं रखते। वे उसे अपना और सरकार का नौकर समझते हैं। वर्तमान व्यवस्था में अध्यापक वेतनभोगी सेवक बन गया है। यही अध्यापक के प्रति इस सामाजिक दृष्टिकोण का मूल कारण है। विद्या का स्वतन्त्र रूप नहीं रहा। किन्तु विद्या वस्तुतः आत्मा की प्रतिभा है। वह स्वरूप से ही स्वतन्त्र है। उसे पराधीन नहीं बनाया जा सकता और न उसे धन के बदले खरीदा जा सकता है। धन से जो विद्या प्राप्त हो सकती है, वह ऐसी ही विद्या है जो आज आपको प्राप्त हो रही है। उत्तम और श्रेष्ठ विद्या श्रद्धा एवं सेवा के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

५०—गुरु-सेवा से लाभ

गुरु-सेवा से क्या लाभ है, इसका अनुभव आपको गुरु के निकट जाने र और सेवा से उनके प्रसन्न होने पर ही हो सकता है। सेवा में श्रद्धा ग़ैर विनय भी सम्मिलित है। बिना श्रद्धा और विनय के सच्ची सेवा सम्भव नहीं हो सकती। गुरु-सेवा से आपको जैसी उत्तम विद्या मिल सकती है, वैसी आपको सरकारी नौकर की हैसियत से विद्यालय पढ़ाने

वाले अध्यापक से अथवा आपका नौकर बनकर घर पर पढ़ाने वाले अध्यापक से नहीं मिल सकती। दोनों अपने वेतन का बदला आपको विद्या के बाहरी रूप सिखा कर देते हैं। इन बाहरी रूपों में विद्या की आत्मा नहीं होती। अतः ये निष्प्राण होते हैं। आजकल विद्यालयों में जो विद्या प्राप्त होती है, वह ऐसी ही निष्प्राण है। इसीलिए वर्तमान विद्यालय ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्ति उत्पन्न नहीं कर रहे हैं जैसे कि प्राचीन गुरुओं की झोंपड़ियों से उत्पन्न हुए थे और जिनकी रचनाएँ समझ सकने की क्षमता भी आज के विद्वानों में नहीं है।

गुरु-सेवा ही तेजस्वी विद्या का एक मात्र मार्ग है। यही सेवा का सबसे बड़ा लाभ है। गुरु-सेवा से आपको विद्या के जो रहस्य, विषय के जो मर्म, भाषा की जो बारीकियाँ, ज्ञान की जो गहराइयाँ मालूम होंगी, अन्य किसी प्रकार से आपको मालूम नहीं हो सकतीं। धन के बदले विद्या खरीदने वाले न इन तत्वों को जानते हैं और न धन के बदले ये मिल सकती हैं। विद्या का क्षेत्र इतना रहस्यमय है और इसके तत्व इतने सूक्ष्म हैं कि ज्ञानी गुरु के अतिरिक्त दूसरा कोई उनको न समझ सकता है और न उनकी माँग कर सकता है। विद्या के क्षेत्र में आपकी स्थिति वैसी ही है जैसी कि जौहरी बाज़ार में एक साधारण मनुष्य की होती है। वह केवल रत्नों के नाम जानता है, उसे उनकी परख नहीं है। जौहरी चाहे तो रत्न के स्थान पर काँच भी दे सकता है और आप पहचान नहीं सकते। विद्या के जौहरी बाजार में आपको आज काँच ही मिल रहे हैं। कारण यह है कि गुरु को जौहरी के समान विद्या रत्नों के बदले आप से कोई लाभ प्राप्त नहीं करना है। विद्या के रत्न अनमोल हैं। वे श्रद्धा और सेवा के बदले ही मिल सकते हैं। सेवा से गुरु की आत्मा के रत्नकोष में प्रवेश करके ही आप उन्हें प्राप्त कर सकते हैं।

५१—योग्य गुरु के लक्षण

गुरु बनने और बनाने के लिए कुछ गुणों की आवश्यकता है। रस्सी को भी संस्कृत में 'गुण' कहते हैं। रस्सी से बाँधते हैं। सम्बन्ध का अर्थ भी 'बन्धन' है। गुरु और शिष्य का सम्बन्ध भी गुणों के द्वारा ही सम्भव होता है। यदि दोनों में कुछ आवश्यक गुणों की कमी होगी तो सम्बन्ध न बन सकेगा। यदि बना तो स्थाई और फलदायक न होगा। बाहरी सम्बन्ध परस्पर स्वार्थों पर निर्भर होते हैं। दोनों ओर के स्वार्थ के आधार पर वे बनते और चलते हैं। ये बाहरी सम्बन्ध व्यावहारिक अथवा व्यापारिक होते हैं। जब तक स्वार्थ रहता है, तब तक ये चलते हैं। इन सम्बन्धों में एक दूसरे का बाहरी लाभ हो सकता है। किन्तु गुरु-शिष्य के सम्बन्ध में दोनों का बराबर लाभ नहीं है। उनमें शिष्य का अधिक लाभ है। अतः शिष्य के गुणों और उसकी सेवा के आधार पर ही यह सम्बन्ध चल सकता है।

किन्तु योग्य गुरु की सेवा से ही शिष्य को लाभ हो सकता है। योग्य गुरु ही सच्चा गुरु है। विद्या और व्यक्तित्व की श्रेष्ठता योग्य गुरु के मुख्य लक्षण हैं। गुरु-शिष्य के सम्बन्ध और गुरु-सेवा का उद्देश्य शिष्य की विद्या का विकास एवं उसके जीवन का उत्थान है। यह तभी सम्भव हो सकता है, जबकि गुरु स्वयं उत्तम विद्या और श्रेष्ठ चरित्र से सम्पन्न हो। विद्या और चरित्र आपको उसी से प्राप्त हो सकते हैं, जो इनका धनी है। गुणवान् गुरु की खोज कीजिये। प्रतिभा-वान गुरु से आपको राजस्वी विद्या मिलेगी। पारस के समान गुरु की प्रतिभा शिष्य की बुद्धि को भी स्वर्ण बना देती है। प्रेम और विनय भी अच्छे गुरु के लक्षण हैं। गुरु की विनय शिष्य को भी विनयशील बनाती है। विद्या के भार से गुरु फलित वृक्षों के समान नम्र हो जाते हैं। अहंकार और दम्भ रखने वाला गुरु उत्तम नहीं है। अपनी

प्रशंसा करना भी अहंकार है। उपनिषदों के गुरु बड़े विनयशील थे। प्रेम से ही गुरु अपने शिष्य को उत्तम विद्या और श्रेष्ठ चरित्र की प्रेरणा दे सकता है। प्रेम दूसरे के प्रति परम हित का भाव है। सच्चा गुरु वही है, जो प्रेम-पूर्वक शिष्य को जीवन में उन्नति और कल्याण का मार्ग दिखाता है।

५२–योग्य शिष्य के लक्षण

योग्य और उत्तम गुरु की खोज कीजिये। सेवा से उन्हें प्रसन्न कर उनका प्रेम और उनकी कृपा प्राप्त कीजिये। उनके प्रेम और उनकी कृपा से आपकी उन्नति का मार्ग प्रकाशित होगा। किन्तु गुरु की कृपा से तभी लाभ हो सकेगा जबकि आप उसके योग्य हों अथवा योग्य बनें। योग्य शिष्य ही गुरु का अनुग्रह प्राप्त कर सकता है और उनके सम्पर्क से लाभ उठा सकता है। गुरु और शिष्य के सम्बन्ध के स्थिर और फलदायक होने के लिये जहाँ एक ओर गुरु का योग्य एवं गुणवान होना अपेक्षित है वहाँ दूसरी ओर शिष्य का भी योग्य एवं गुणवान होना आवश्यक है। शिष्य की योग्यता और उसके गुणों से प्रभावित होकर ही गुरु कृपा एवं विद्यादान की ओर अभिमुख होते हैं। अतः योग्य गुरु से विद्या का प्रकाश और चरित्र की प्रेरणा ग्रहण करने के लिये योग्य शिष्य बनिये।

योग्य शिष्य के लक्षणों में श्रद्धा, विनय, सेवा, जिज्ञासा और ग्राहकता मुख्य हैं। श्रद्धा ही आत्मीय सम्बन्धों की नींव है। श्रद्धा का अर्थ हृदय की आस्था है, इसमें आदर, प्रेम और भय की त्रिवेणी का संगम है। यह गुरु और शिष्य के सम्बन्ध की प्रथम ग्रंथि है। श्रद्धा के द्वारा ही गुरु की कृपा का प्रवाह शिष्य की ओर प्रारम्भ होता है। श्रद्धा की अभिव्यक्ति विनय और सेवा में होती है। विनय हृदय का अहंकारहीन

भाव है। सेवा उसकी व्यावहारिक अभिव्यक्ति है। अपना अहंकार दूसरे के अहंकार को उत्तेजित करता है। अहंकारों का संघर्ष, सम्बन्ध-विच्छेद और द्वेष का कारण होता है। जिस प्रकार अहंकार से अहंकार उत्तेजित होता है, उसी प्रकार विनय से विनय जागरित होती है। शिष्य की विनय गुरु को भी नम्र बनाती है। सेवा से गुरु प्रसन्न होते हैं। सेवा से बढ़कर गुरु की कृपा प्राप्त करने का कोई मार्ग नहीं है। जिज्ञासा का अर्थ ज्ञान की इच्छा है। शिष्य की जिज्ञासा गुरु की प्रतिभा का द्वार खोलती है। ज्ञान की उत्कट इच्छा से आप गुरु के ज्ञान-कोष में प्रवेश कर सकते हैं। किन्तु ज्ञान को ग्रहण करने की क्षमता भी शिष्य में होनी चाहिये। जो ग्रहण नहीं कर सकता उसको ज्ञान देने की इच्छा गुरु को नहीं होती। योग्य शिष्य बनने के लिये इन गुणों का सम्पादन कीजिये और गुरु की कृपा एवं प्रेरणा से उत्तम विद्या के मार्ग में आगे बढ़िये।

५३—अन्तेवासी बनिए

श्रद्धा एवं विनय पूर्वक गुरु की सेवा से गुरु की कृपा और उससे श्रेष्ठ विद्या प्राप्त होती है। गुरु से दूर रह कर भी आप समय समय पर गुरु की सेवा कर सकते हैं और इस प्रकार जितना सम्पर्क आपको प्राप्त होता है उससे आपको लाभ मिलेगा। गुरु के सम्पर्क से आपको प्रेरणा, प्रकाश, तेज और उत्कर्ष प्राप्त होगा। वस्तुतः गुरु का निकट सम्पर्क ही विद्या का मूल रहस्य है। यह सम्पर्क आपको जितना अधिक प्राप्त होगा उतना ही अधिक अवसर आपको गुरु की तेजस्वी प्रतिभा का प्रकाश अपनी आत्मा में ग्रहण करने को मिलेगा। तेजस्वी आचार्य सूर्य के समान हैं। उनका सीधा प्रकाश निकट सम्पर्क में ही मिलता है। विद्यालयों की शिक्षा में एक बनावटीपन रहता है इससे अध्यापक और छात्र के सम्बन्ध में एक वक्रता अर्थात् टेढ़ापन आता है। इस वक्रता के कारण छात्र को अध्या-

पक की आत्मा का सीधा प्रकाश नहीं मिलता मानो वह छाया में रहता है और छाया के वृक्ष के समान ही पूरी तरह विकसित नहीं होता।

विद्यालय का नियमित क्रम विद्या की स्वच्छन्दता को नष्ट कर देता है। नियम की पराधीनता विद्या की स्वतन्त्रता को नष्ट कर देती है। नियमित रूप से पढ़ाना अध्यापक का अभ्यास बन जाता है, किन्तु उसके कार्य में कोई स्फूर्ति, उत्साह, रुचि और नवीनता नहीं रहती। इनके बिना अध्यापन एक प्रकार की बेगार है। और विद्या निष्प्राण है। आधुनिक शिक्षा में यही बेगार बहुत हो रही है। इस बेगार की शिक्षा में आपका समय और जीवन तो नष्ट हो ही रहा है, आपको जो विद्या प्राप्त हो रही है वह भी अत्यन्त दुर्बल है। कक्षा की भीड़ में अध्यापकों और छात्रों में एक दूरी रहती है। निकट के सम्पर्क की आत्मीयता न होने के कारण अध्यापन समुचित प्रभाव नहीं रखता। अध्यापक मशीन की भाँति पढ़ाता है और छात्र उदासीन भाव से सुनते रहते हैं। उनकी आत्मा में कोई प्रेरणा और प्रकाश नहीं होता। यदि आपको तेजस्वी विद्या की प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त करना है तो गुरु का निकट सम्पर्क प्राप्त कीजिऐ। प्राचीन काल में शिष्य, गुरु के साथ ही रहते थे इसीलिये 'अन्तेवासी' कहलाते थे। विद्या का प्रेमी सदा सज्जन तथा उदार होता है। आज भी आप श्रद्धा और सेवा से गुरु के अन्तेवासी बनकर सर्वोत्तम विद्या प्राप्त कर सकते हैं।

५४–कितने गुरु बनाएँ

समय और स्वाभिमान के अतिरिक्त गुरु सेवा के सम्बन्ध में एक प्रश्न यह भी है कि "कितने गुरु बनाएं ?" प्राचीनकाल में विद्यार्थी एक ही गुरु के पास रहते थे। जो गुरु के पास नहीं रहते थे वे भी प्रायः एक ही गुरु से पढ़ते थे। सम्पूर्ण विद्या एक ही गुरु

से प्राप्त करने के कारण गुरु शिष्य का सम्बन्ध एक प्रकार का आजीवन और स्थायी सम्बन्ध होता था। प्राचीनकाल में एक निश्चित गुरु-परम्परा होती थी। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में उस गुरु परम्परा के उल्लेख मिलते हैं। उन ग्रन्थों के प्रणेताओं ने अपने गुरुओं की वन्दना ग्रन्थ के आरम्भ में ही की है। तुलसीदास ने भी 'रामचरित-मानस' के आरम्भ में ही गुरु का वन्दन किया है। प्राचीन शिक्षा में इतने विषय नहीं थे। जो दो चार विषय पढ़ने की प्रथा थी, उनको एक ही गुरु पढ़ा सकता था। किन्तु आजकल विषय बहुत बढ़ गये हैं। एक ही विषय के अंशों को अलग अलग अध्यापक पढ़ाते हैं। पहली कक्षा से लेकर अन्त तक एक छात्र दर्जनों अध्यापकों से पढ़ता है। प्रश्न यह उठता है कि वह कितने गुरु बनाए और कितने गुरुओं की सेवा करे ? प्रश्न कितना ही कठिन हो किन्तु यह शिक्षा का एक सनातन सत्य है कि गुरु के सम्पर्क और अनुग्रह के बिना श्रेष्ठ विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। अतः इस कठिन प्रश्न का भी हल खोजना होगा। इसका सर्वोत्तम हल यही है कि गुरु-शिष्य सम्बन्ध के प्राचीन रूप को नवीन परिस्थितियों के अनुकूल अपनाया जाये।

विद्या के दो पक्ष हैं—एक पक्ष तो सामान्य रूप से उत्तम भाषा का अभ्यास और तीव्र बुद्धि का विकास है। इसके लिए एक तिभाशाली और कृपालु गुरु का स्थायी सम्बन्ध सबसे उत्तम है। भाषा और बुद्धि के समर्थ होने पर विषयों का समझना सुगम हो जाता है। विद्या का दूसरा पक्ष आज की शिक्षा के अनेक विषय हैं। उन विषयों के पढ़ाने वाले अध्यापकों से भी यथा सम्भव निकट सम्पर्क बनाना लाभदायक है।

५५—गुरु सेवा के लिए समय नहीं

आजकल के अभिमानी छात्र गुरु की सेवा को अपना अपमान समझते हैं। गुरु की सेवा के बिना उन्हें जो विद्या प्राप्त होती है उसकी

दुर्दशा सबके सामने प्रत्यक्ष है। यदि आज के छात्र इस दुर्दशा को भली प्रकार नहीं समझ रहे हैं तो यह उनका, देश का और विद्या का दुर्भाग्य है। उस दुर्दशा को समझने के लिये भी कुछ समझ की आवश्यकता है। कदाचित उन छात्रों में इतनी भी समझ नहीं आयी है। वस्तुतः अज्ञान को समझने के लिये भी ज्ञान की आवश्यकता है। गुरु सेवा में अपमान के अतिरिक्त समय का भी प्रश्न है। जो छात्र अभिमानी नहीं हैं और गुरु सेवा में अपना अपमान नहीं समझते उनकी कठिनाई यह है कि उनके पास गुरु-सेवा के लिये समय नहीं है। वे अपने व्यक्तिगत और पढ़ाई लिखाई के कार्यों में इतने व्यस्त रहते हैं उन्हें गुरु के पास जाने का अवकाश ही नहीं मिलता। कुछ छात्र आलसी और कर्मभीरु भी होते हैं। वे काम से डरते हैं अतः गुरु-सेवा से दूर रहते हैं।

गुरु की सेवा में जिनको अपमान का अनुभव होता है वे उत्तम विद्या किसी प्रकार प्राप्त नहीं कर सकते। नकली और निष्फल विद्या से संतुष्ट होकर वे अपने अभिमान की रक्षा कर सकते हैं। गुरु-सेवा के अतिरिक्त उत्तम विद्या का दूसरा कोई साधन नहीं है। अतः यदि आप विद्या में उन्नति करना चाहते हैं तो आपको गुरु-सेवा के लिए अवकाश निकालना होगा। आपकी व्यस्तता आपका भ्रम है। आप जिन कामों में समय और श्रम लगाते हैं उनका उतना फल नहीं होता जितना होना चाहिये। दिन-रात पढ़ने वाले भी फेल होते हैं या तृतीय श्रेणी में पास होते हैं। गुरु के सम्पर्क से आपको जो तेज और प्रेरणा मिलेगी उससे आपको कम परिश्रम से भी अधिक लाभ होगा। थोड़े समय पढ़ने से भी अच्छी योग्यता और अच्छा परीक्षा-फल प्राप्त होगा। गुरु-सेवा का अद्भुत रहस्य यह है कि गुरु-सेवा से ही आपको गुरु-सेवा के लिये समय और अवकाश भी मिलेगा।

५६—गुरु से आगे बढ़िये

गुरु की सेवा उत्तम विद्या का मूल मन्त्र है किन्तु गुरु-सेवा का शिष्य के आत्मगौरव से कोई विरोध नहीं है। गुरु का शासन स्नेह और स्वतन्त्रता का शासन है। जिस शासन में दर्प, दम्भ और जबरदस्ती रहती है वह विद्या के क्षेत्र के अनुकूल नहीं है। विद्या चेतना का स्वतन्त्र विकास है। अतः स्वतन्त्रता का शासन ही उसके अनुकूल है। जो गुरु शिष्य की आत्मा का और उसकी स्वतन्त्रता का दमन करता है वह अच्छा गुरु नहीं है। शिष्य की प्रतिभा का आदर कर उसकी योग्यता की वृद्धि की प्रेरणा देना गुरु का प्रथम कर्त्तव्य है। उपनिषदों का आदेश है कि गुरु और शिष्य को एक दूसरे से द्वेष नहीं करना चाहिये।

शिष्य को विनयशील होना उचित है। गुरु को भी शिष्य के साथ स्नेह और आदर का व्यवहार करना चाहिये। संस्कृत की प्राचीन कहावत है कि गुरु को सबसे जीतने की इच्छा रखनी चाहिये, किन्तु शिष्य से हारने की कामना करनी चाहिये 'अर्थात् गुरु को यह इच्छा करनी चाहिये कि 'मेरा शिष्य मुझ से भी अधिक योग्य बने और शास्त्रार्थ में मुझे भी पराजित कर सके।' शिष्य से पराजित होने में ही गुरु का गौरव है। अपने से भी योग्य शिष्य उत्पन्न करना गुरु के लिए गर्व की बात है। जब शिष्य गुरु से भी अधिक योग्य होंगे तभी तो विद्या की उन्नति होगी। हमारे देश में यह परम्परा क्षीण हो जाने के कारण ही प्राचीन विद्या का ह्रास हुआ। अपने से योग्य शिष्य उत्पन्न करने के लिये जो उदारता चाहिये वह गुरुओं में न रही। दूसरी ओर शिष्यों में भी ऐसा श्रद्धा और सेवा का भाव नहीं रहा जो गुरु को इतना प्रसन्न कर सके और उनमें इतनी आत्मीयता के भाव जागरित कर सके कि वे शिष्य के उत्कर्ष को ही अपना गौरव माने। गुरु से भी आगे बढ़ने

का उत्साह रखिए। किन्तु यह उत्साह मिथ्या अभिमान से नहीं वरन् गुरु के प्रति, विनय और सेवा के भाव से ही सफल हो सकेगा।

५७–स्वास्थ्य जीवन का आधार है

सम्पूर्ण शिक्षा का अभिप्राय व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है। इसमें शरीर और मन दोनों का विकास सम्मिलित है। शरीर का समुचित विकास स्वास्थ्य का लक्षण है। मन का विकास विद्या और चरित्र में होता है। विद्या ज्ञान का उपार्जन है और चरित्र अच्छे गुणों का सम्पादन है। मन का विकास मनुष्य की विशेषता है; पशुओं में विद्या और चरित्र का विकास नहीं होता। किन्तु शरीर का विकास और स्वास्थ्य भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। तपस्या से क्षीण पार्वती के प्रति शिव ने कहा था कि 'शरीर मनुष्य के धर्म-पालन का प्रथम साधन है।' शरीर के विना मन का अस्तित्व और विकास सम्भव नहीं है। शरीर में ही मन निवास करता है। यदि मन देवता है, तो शरीर उसका मन्दिर है। देवता के सुन्दर होने के साथ मन्दिर का भी मजवूत और सुन्दर होना आवश्यक है। भव्य और सुदृढ़ मंदिर में ही देवता प्रतिष्ठित होते हैं। स्वस्थ और सुन्दर शरीर में ही मन का समुचित विकास होता है।

प्राय: वल को स्वास्थ्य का लक्षण माना जाता है। इसका कारण यह है कि स्वस्थ शरीर वलवान् होता है। स्वास्थ्य का अर्थ निरोगता भी है। रोग से दुर्वलता आती है अत: नीरोग शरीर वलवान होता है। कोई अन्य रोग न होने पर दुर्वलता को भी रोग ही समझना चाहिये। वलिष्ठ होने के कारण स्वस्थ शरीर के सव अंग अच्छी तरह काम करते हैं। सव अंगों का अच्छी तरह काम करना भी स्वास्थ्य का लक्षण है। अंगों की ठीक क्रिया से ही वल भी वढ़ता है। स्वास्थ्य से सुन्दरता भी

प्राप्त होती है। स्वस्थ शरीर सुन्दर भी होता है। शरीर का सुडौल होना ही पुरुष के लिये पर्याप्त सुन्दरता है। स्वास्थ्य के वल से मनुष्य कुशलता पूर्वक कर्म करने में समर्थ होता है। विद्याध्ययन में श्रम करने के लिए भी शक्ति की आवश्यकता है। स्वास्थ्य से आपके व्यक्तित्व का प्रभाव बढ़ता है और सफलता के मार्ग खुलते हैं। अतः सबसे पहले स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाइये।

५८–स्वास्थ्य के साधन

स्वास्थ्य के पाँच मुख्य सावन हैं—भोजन, व्यायाम, निद्रा, प्रसन्नता और सच्चरित्रता। भोजन शक्ति का स्रोत है। भोजन से शरीर के वे तत्व प्राप्त होते हैं जिनसे वह स्वस्थ और बलवान बनता है। प्रकृति ने मनुष्य को प्रचुर भोजन दिया है किन्तु मनुष्य को सदां पौष्टिक भोजन प्रिय नहीं है। सभ्यता के साथ स्वाद बढ़ गया है। चटपटी और नशीली वस्तुओं का प्रचार बहुत है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक हैं। सादा भोजन अधिक स्वास्थ्यकर है। रोटी, साग, दाल, दूध और फल सबसे उत्तम भोजन है। इन्हें स्वास्थ्य का पंचामृत समझना चाहिये। इनके अतिरिक्त अन्य वस्तुएं अनावश्यक अथवा हानिकारक हैं। भोजन पचने पर बल देता है। व्यायाम से भोजन पचता है। व्यायाम से शरीर के सभी अंग पुष्ट होते हैं। और पेट की पाचन क्रिया भी तीव्र होती है। भोजन के साथ व्यायाम भी सादा होना चाहिये। खेलना अथवा दौड़ना सबसे सरल और उत्तम व्यायाम है। खेल सबको सुलभ नहीं है। उसके लिये अधिक समय और धन चाहिये। खेल पराधीन भी है। दूसरों के साथ ही आप खेल सकते हैं। दस मिनट का तेज़ दौड़ना पर्याप्त व्यायाम है। यह सबसे सरल और स्वतन्त्र है।

व्यायाम से थकान होती है अतः विश्राम भी आवश्यक है। विश्राम

से ही शरीर की शक्ति बढ़ती है। विश्राम का अर्थ आलस्य अथवा निष्कर्मता नहीं है। शरीर और मन की शान्त अवस्था ही विश्राम है। निद्रा विश्राम का सर्वोत्तम रूप है। इसमें थके हुये शरीर और मन दोनों को पूर्ण आराम मिलता है तथा दोनों को नई स्फूर्ति प्राप्त होती है। अधिक और कम सोना बुरा है, रात के बीच में सोना चाहिये। रात के आदि और अन्त का समय अध्ययन के लिये उत्तम है। प्रसन्नता भी स्वास्थ्य के लिये अपेक्षित है। उदासी अथवा चिन्ता से स्वास्थ्य क्षीण होता है अतः सदा प्रसन्न रहना चाहिये। चरित्र स्वास्थ्य का नैतिक आधार है। अच्छे चरित्र के बिना अच्छा स्वास्थ्य सम्भव नहीं है।

५९–भोजन कैसा हो

स्वास्थ्य का प्रथम साधन भोजन है। भोजन स्वास्थ्य का ही नहीं जीवन के अस्तित्व का आधार है। भोजन के बिना जीवन सम्भव नहीं है, भोजन से ही शरीर बनता, बढ़ता और सुरक्षित रहता है। भोजन में शरीर का पोषण करने वाले तत्व होते हैं। पाचन-शक्ति के द्वारा शरीर इन तत्वों को आत्मसात करता है और इन्हीं तत्वों से बनता तथा बढ़ता है। भोजन के तत्व शरीर को शक्ति देते हैं। ये तत्व शरीर के यन्त्र के लिये आपेक्षित विविध आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। शरीर के पोषण के लिये आवश्यक तत्वों में पाँच तत्व प्रधान हैं। ये पांच तत्व इस प्रकार हैं—कार्बोहाइड्रेट्स, प्रोटीन, चर्बी, विटामिन और धातुऐं। कार्बोहाइड्रेट अन्नों में होते हैं। प्रोटीन दालों, दूध और अंडों में मिलता है। चर्बी से अभिप्राय चिकनाई से है जो घी मक्खन और तेलों में होती है। विटामिन हरी सब्जियों एवं फलों में मिलती है तथा धातुऐं भी इन्हीं में पाई जाती हैं। इन पाँचों के

उचित परिमाण युक्त भोजन संतुलित भोजन कहलाता है और शरीर का सर्वांगीण पोषण करता है।

विद्याध्ययन में बहुत मानसिक श्रम होता है। इसलिये मानसिक शक्ति के साथ साथ शारीरिक शक्ति की भी आवश्यकता होती है। अतः छात्रों के लिये पौष्टिक भोजन अपेक्षित है। किन्तु घी, दूध और फलों की कमी महर्घता के कारण पौष्टिक भोजन की समस्या बड़ी कठिन बन गई है। चाय, सिगरेट आदि हानिकारक पदार्थों के चलन से यह समस्या और जटिल बन गई है। खाद्य पदार्थों में मिलावट भारत की मौलिक पहेली है। देश की सामान्य खाद्य स्थिति में सुधार होने में बहुत समय लगेगा। तब तक प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने लिये यथा सम्भव पौष्टिक भोजन की व्यवस्था करे। जिसमें उक्त पाँचों तत्वों का सन्तुलित अनुपात हो। प्रातःकाल चाय के स्थान पर दूध मिला गेहूँ का दलिया, अपराह्न में दो दिन के भीगे हुऐ कल्लेदार चने और सायंकाल में दो चार बादाम छात्रों के योग्य बहुत सरल, सस्ता और पौष्टिक भोजन है।

६०—व्यायाम कितना करें

भोजन को पचाने के लिए व्यायाम आवश्यक है। व्यायाम से शरीर बलवान् भी बनता है। व्यायाम केवल शारीरिक क्रिया है, अतः उसके लिए किसी व्यय की आवश्यकता नहीं है। उसमें थोड़ा समय अवश्य लगता है। धन के समान समय की समस्या भी छात्रों के लिए कठिन है। अच्छे भोजन के लिए जिस प्रकार छात्रों को धन का अभाव रहता है, उसी प्रकार व्यायाम के लिए समय की कमी रहती है। पढ़ाई-लिखाई उनके लिये इतना भार रहती है कि उन्हें व्यायाम

और खेल कूद के लिये अवकाश नहीं मिलता। खेल कूद भी एक प्रकार का व्यायाम ही है। किन्तु वस्तुतः व्यायाम के लिए समय की नहीं नियम और निश्चय की कठिनाई है। खेल को अवश्य अधिक समय चाहिए। किन्तु अन्य व्यायाम बहुत थोड़े समय में हो सकता है। दस मिनट का सवेरे दौड़ना पर्याप्त व्यायाम है।

व्यायाम में शरीर की क्रिया अधिक तीव्र होती है। इससे सब अंगों में नई शक्ति, नई स्फूर्ति आती है। पौष्टिक भोजन भी व्यायाम से ही पचता है। छात्रों के लिए भोजन के योग में जिस कल्लेदार कच्चे चने का उल्लेख किया है, वह व्यायाम के द्वारा ही पच सकता है। मसाला मिलाकर यह स्वादिष्ट बन जाता है। घोड़े की शक्ति का आधार चना ही है। देवी और हनुमान जैसे शक्ति के देवताओं के प्रसाद में चने के बने हुए पदार्थ ही चढ़ते हैं। इस कठिन काल में चना ही एक स्वास्थ्य और बल का सर्वोत्ताम सहारा है। उसे पचाने के लिए थोड़ा व्यायाम अवश्य करना होगा। छात्रों को अधिक व्यायाम की आवश्यकता नहीं है। जिन्हें पहलवान बनना है, वे ही अधिक व्यायाम करें। साधारण छात्रों के लिये दस मिनट का तेज दौड़ना पर्याप्त है। व्यायाम में पसीना अवश्य आना चाहिए।

६१—खेल और शिक्षा

खेल भी एक प्रकार का स्वास्थ्यकारक व्यायाम है। विद्यालयों में प्रायः खेलों का प्रबन्ध किया जाता है, यद्यपि सभी छात्र खेलों में भाग नहीं ले पाते। खेल की फीस भी ली जाती है। किन्तु सब छात्रों को उसका लाभ नहीं मिलता। सब छात्रों की रुचि एकसी नहीं होती। सबके लिये खेल का प्रबन्ध भी नहीं होता। किन्तु इससे खेल का

महत्व नहीं घटता। खेल एक स्वास्थ्यकर व्यायाम होने के साथ २ मनोरंजन भी है। खेलों में युवकों की व्यावहारिक कुशलता भी बढ़ती है। अधिकांश खेल वेग के साथ खेले जाते हैं। इससे शरीर में स्फूर्ति और चुस्ती आती है। तेज सांस लेने से फैंफड़े मजबूत होते हैं। लाभदायक होते हुए भी बहुत से छात्र खेलों में भाग नहीं ले पाते। अधिकांश छात्रों को खेलने के लिये समय की कमी रहती है। चार-पाँच बजे तक विद्यालय की छुट्टी होती हैं उसके बाद जल्दी शाम हो जाती है। खेलने के लिये समय नहीं रहता। छात्रों को भूख लग आती है। भूखे होने पर खेलना कठिन है और हानिकारक भी है।

खेल के विषय में अनेक कठिनाइयां होने के कारण छात्रों के लिये प्रायः यह प्रश्न रहता है कि शिक्षा में खेल का क्या स्थान है। व्यायाम की दृष्टि से खेलों का महत्व स्पष्ट है। इसमें अतिरिक्त सहयोग, कुशलता आदि के गुण भी युवक खेलों में सीख सकते हैं। किन्तु सभ्यता और शिक्षा दोनों में ही सब लोगों के लिये खेल की व्यवस्था सम्भव नहीं है। भूख और समय की समस्या भी छात्रों से लिये कठिन है। अतः खेलों को अनावश्यक महत्व देना उचित नहीं है। प्रायः देखा जाता है कि खेलने वाले छात्र पढ़ने में तेज नहीं होते। खेल का प्रधान महत्व व्यायाम के लिये है। विद्याध्ययन ही छात्र का मुख्य कर्त्तव्य है। व्यायाम के और भी प्रकार हैं। दस मिनट तेज दौड़ना सबसे सरल और श्रेष्ठ व्यायाम है। यदि आप खेल नहीं पाते हैं तो कोई हानि नहीं है। कैरम, ताश आदि खेल अल्प मनोरंजन के लिये हैं। उन्हें नशा नहीं बनाना चाहिये।

६२—निद्रा देवी का प्रसाद

व्यायाम और परिश्रम से थकान आती है। अतः शरीर के लिये व्यायाम अपेक्षित है। निद्रा विश्राम का स्वाभाविक रूप है। प्रकृति

ने विश्राम के लिए जीवों को निद्रा का अमृत वरदान दिया है। रात्रि की निद्रा के अतिरिक्त छात्रों को युवक होने के कारण अन्य किसी प्रकार के विश्राम की आवश्यकता नहीं है। निद्रा में पूर्ण और पर्याप्त विश्राम मिल जाता है। निद्रा के गम्भीर विश्राम से शरीर में नई शक्ति, नई स्फूर्ति आ जाती है। विश्राम में शक्ति का व्यय कम हो जाता है। और नई शक्ति उत्पन्न होती है। दिन के कार्य और परिश्रम में शक्ति व्यय होने के कारण निद्रा के द्वारा यह शक्ति की पूर्ति अत्यन्त आवश्यक है। शक्ति की स्रोत होने के कारण ही दुर्गा सप्तशती में निद्रा को देवी का रूप बताया है (या देवी सर्वभूतेषु निद्रा रूपेण संस्थिता) आयुर्वेद में निद्रा को रोग हरण करने वाली मानते हैं (अर्द्धरोग हरी निद्रा)।

शक्ति और स्वास्थ्य के लिये गहरी नींद अधिक लाभदायक है। गहरी नींद कठिन परिश्रम और निश्चिन्तता से आती है। आजकल शिक्षित लोग कठिन परिश्रम कम करते हैं। इसी लिये इनको गहरी नींद नहीं आती। आजकल के छात्र भी कठिन परिश्रम करना पसन्द नहीं करते। आधुनिक शिक्षा सज्जा, श्रृंगार और सुकुमारता की ओर अधिक ले जाती है। व्यायाम, खेलकूद अथवा दौड़ने के रूप में ही शारीरिक परिश्रम करने पर भी अच्छी नींद आ सकती है। चिन्ताएँ मानसिक शान्ति को भंग कर देती हैं और गहरी नींद में बाधक होती हैं। नींद की अवधि से अधिक महत्वपूर्ण उसकी गम्भीरता है। नींद का समय भी विचारणीय है। रात को जल्दी सोना और सवेरे जल्दी उठना स्वास्थ्य और सौभाग्य का दायक है। रात में अधिक देर तक पढ़ना और सवेरे देर से उठना हानिकारक है।

६३—प्रसन्नता की धूप में

भोजन और व्यायाम स्वास्थ्य के भौतिक आधार हैं। निद्रा शारीरिक

विश्राम होने के साथ २ मानसिक विश्राम भी है। किन्तु मानसिक प्रसन्नता का भी स्वास्थ्य में अद्भुत योग है। चित्त की प्रसन्नता प्रातः-काल की धूप के समान उज्ज्वल और पवित्र है। जिस प्रकार धूप के प्रभाव से फूल खिलते हैं और फल पकते हैं, उसी प्रकार प्रसन्नता के आलोक में शरीर स्वस्थ रहता है और मन के उदात्त भाव खिलते हैं। प्रसन्नता स्वस्थ मन का लक्षण है। मन की स्वस्थता शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ाती है। प्रसन्न स्वभाव से शरीर और मन की शक्तियों का अपव्यय नहीं होता वरन् दूसरी ओर ये शक्तियाँ बढ़ती हैं।

प्रसन्नता मन का उल्लास और चित्त की प्रफुल्लता है। उल्लास की स्फूर्ति से शरीर और मन में शक्ति के स्रोत खुल जाते हैं। प्रसन्नता से स्वास्थ्य की वृद्धि के साथ साथ मुख की कान्ति भी बढ़ती है। अतः सदा प्रसन्न रहिए। अकारण चिन्ताओं मे मन प्रसन्नता को नष्ट करना मूर्खता है। वास्तविक कठिनाइयों का समाधान करना चाहिये। विद्या की अच्छी साधना से भविष्य की चिन्ता दूर होती है। योग्य छात्रों को जीवन की सफलता का विश्वास रखना चाहिये। दूसरों के साथ स्नेह और सद्भाव के सम्बन्ध प्रसन्नता को बढ़ाते हैं। अकारण ईर्ष्या, द्वेष, शत्रुता आदि से अपनी प्रसन्नता नष्ट करना, धुँआ पैदा कर चाँदनी को कलुषित करना है। उदारता से प्रेम और प्रसन्नता बढ़ती है। कठिनाइयों और संकटों का सामना हँसते हँसते करना चाहिए। यही यौवन का लक्षण है। चिन्ता और उदासीनता वार्धक्य के लक्षण हैं। आर्थिक कठिनाइयों का उपचार सादा जीवन, स्वावलम्बन और परिश्रम से अर्थोपार्जन है।

६४—सच्चरित्रता स्वास्थ्य का तेज है

भोजन और व्यायाम से प्राप्त होने वाली शारीरिक शक्ति और प्रसन्नता से प्रवाहित होने वाली मानसिक स्फूर्ति के अतिरिक्त स्वास्थ्य का

एक आध्यात्मिक आधार भी है। इसे हम सच्चरित्रता कह सकते हैं क्यों कि चरित्र के रूप में वह सबसे अधिक सरल रूप में समझा जा सकता है। चरित्र का मूल स्वरूप आत्मा की पवित्रता है। सज्जनता, प्रेम, सद्भाव, उदारता, सत्यता, विश्वासपात्रता आदि अच्छे गुणों में वह आत्मा की पवित्रता प्रकट होती है। ये गुण मनुष्य के आचार को सभ्य और संस्कृत बनाते हैं। इसीलिए सदाचार को चरित्र की सामाजिक अभिव्यक्ति माना जाता है। चरित्र के अन्तर्गत मनुष्य के व्यक्तित्व और व्यवहार के वे लक्षण आते हैं, जिन्हें समाज अच्छा कहता है और आदर की दृष्टि से देखता है।

चरित्र का एक प्रमुख लक्षण संयम है। संयम सा अर्थ इन्द्रियों और मन की उच्छृंखलता, चंचलता एवं अमर्यादितता को रोकना है। इनमें शरीर और मन की शक्ति का अपव्यय होता है और दुर्बलता आती है। संयम में सभी प्रकार का मर्यादित व्यवहार सम्मिलित है। आचार, विचार आदि सभी की मर्यादा चरित्र को दृढ़ बनाती है। ब्रह्मचर्य का संयम और चरित्र में अधिक महत्व है, क्योंकि ब्रह्मचर्य की शिथिलता क्षीणता का सबसे बड़ा कारण है। उत्तेजनाओं, प्रलोभनों और आकर्षणों से स्थिर चित्त रहकर मर्यादित व्यवहार करना सचरित्रता है। चरित्र आत्मा का बल और व्यक्तित्व की शक्ति है। वह स्वास्थ्य का आध्यात्मिक आधारपीठ है और स्वास्थ्य को तेजस्वी बनाता है।

६५—ब्रह्मचर्य की महिमा

प्राचीन काल में विद्यार्थियों को ब्रह्मचारी कहते थे। ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर छात्र विद्याध्ययन करते थे। मुनियों का मत है कि ब्रह्मचर्य से शरीर का स्वास्थ्य और मन की तेज दोनों बढ़ते हैं। ब्रह्मचर्य का अर्थ

इन्द्रियों का संयम है। वीर्य की रक्षा इसमें प्रमुख है। वीर्य शरीर का सार और शक्ति का स्रोत है। वीर्य ही बल है। अतः उसकी रक्षा करनी चाहिये। रसना आदि इन्द्रियों का संयम भी ब्रह्मचर्य का अंग है। स्वादिष्ट भोजन आदि से भी जीवन का तेज मन्द होता है। सुख और स्वाद का मोह शरीर के साथ मन को भी दुर्बल बनाता है। अतः बल-वान शरीर और सशक्त मन के निर्माण के लिये ब्रह्मचर्य आवश्यक है। इसीलिए प्राचीन शिक्षा में इसका इतना महत्व था। किन्तु आजकल ब्रह्मचर्य उपहास का विषय बन गया है। वह एक दकियानूसी पुराण-पंथी सिद्धान्त समझा जाता है। पश्चिमी सभ्यता के विलासमय दृष्टिकोण से प्रभावित आधुनिक भारतवासी ब्रह्मचर्य को असम्भव और अनावश्यक मानते हैं।

इस आधुनिक दृष्टिकोण में अनेक भ्रम हैं। प्राचीन ब्रह्मचारी का बाहरी रूप आज अवश्य विचित्र-सा लगता है किन्तु जटा, कोपीन, कमण्डल ब्रह्मचारी के बाहरी लक्षण हैं। ब्रह्मचर्य का तत्व आन्तरिक संयम है। मन का संयम मुख्य है, क्योंकि मन से ही इन्द्रियों का संचालन और शासन होता है। वस्तुतः ब्रह्मचर्य केवल एक प्राचीन रूढ़ि नहीं है। वह जीवन का सनातन सत्य है और सदा हितकारी है। वीर्य समस्त शरीर का पोषण कर उसे बलवान बनाता है। अतः उसकी रक्षा स्वास्थ्य के लिये हितकारक है। अधिक प्रलोभन में रहने से इन्द्रियां चंचल रहती हैं और मन को चंचल बनाती हैं। चंचल मन वाला मनुष्य अध्ययन अथवा अन्य किसी कार्य में ध्यान नहीं लगा सकता। चंचलता मन की दुर्बलता है। दुर्बल मन वाला मनुष्य उन्नति नहीं कर सकता। अध्ययन और उन्नति के लिये शक्तिमान मन आपेक्षित है। छात्र-जीवन में ब्रह्मचर्य का पालन विद्या और स्वास्थ्य की उन्नति के लिये हित-कारक है।

६६–ब्रह्मचर्य के लक्षण

प्राचीन काल में ब्रह्मचारी जटा, कोपीन, कमण्डल आदि धारण किए साधु से प्रतीत होते थे। किन्तु यह उनका ऊपरी वेष था। ये ब्रह्मचारी के उपकरण हैं, लक्षण नहीं। ब्रह्मचर्य के मुख्य लक्षण तेज, वल, प्रतिभा, क्षमता और संयम है। ब्रह्मचारी के मुखमण्डल पर उदयकाल के सूर्य के समान उज्जवल तेज चमकता है। इस तेज का आभास स्वामी दयानन्द और स्वामी विवेकानन्द जैसे आधुनिक युग के युवा ब्रह्मचारियों के चित्रों में उनके मुख पर देखा जा सकता है। यह तेज क्रीम, स्नो आदि के नकली प्रसाधनों से प्राप्त नहीं हो सकता। यह वीर्य के ऊर्ज्वस्वित ओज का प्रखर तेज है, जिसका वर्णन जयशंकर प्रसाद ने "कामायनी" के प्रथम सर्ग में मनु का रूप अंकित करने में किया है। ब्रह्मचारी का शरीर वलवान होता है। स्वामी दयानन्द ने वाजार में लड़ते हुए साँड़ों के सींग पकड़ कर अलग अलग कर दिया था। जवकि सव लोग डर कर भाग रहे थे।

प्रतिभा को मानकर और बुद्धि को तेज कह सकते हैं। जिस प्रकार मुख का तेज चमकता है, उसी प्रकार प्रतिभा का तेज भी ब्रह्मचारी के विचार, भाव और वचन में प्रमाणित होता है। उसके विचार सूक्ष्म, गम्भीर और प्रभावशाली होते हैं। उसके भावों में गम्भीरता, गरिमा और उदारता होती है। उसकी वाणी मेघ के समान मन्द्र, गम्भीर तथा प्रभावशाली होती है। प्रतिमा का तेज ब्रह्मचारी की विद्या को तेजस्वी वनाता है। ब्रह्मचर्य की प्रतिभा के विना विद्या दुर्वल रहती है। क्षमता का अर्थ कर्म करने की शारीरिक और मानसिक शक्ति है। ब्रह्मचारी धैर्य और दृढ़ता पूर्वक किसी भी शारीरिक एवं मानसिक कार्य को दीर्घ काल तक कर सकता है। ब्रह्मचर्य के इन सब लक्षणों का मूल संयम है। संयम से शक्ति और तेज की वृद्धि होती है। ब्रह्मचारी के व्यवहार

में भी संयम रहता है। उसका मन लोभनों और आकर्षण में भी संयमित रहता है। वह पर्वत के समान दृढ़ और अचल रहता है, ऐसा ब्रह्मचर्य उपहास की नहीं आदर की वस्तु है। छात्र-जीवन को सफल बनाने के लिये ब्रह्मचार्य का पालन कीजिए।

९७–ब्रह्मचर्य में बाधाएँ

कल्याणकारक होते हुऐ भी वर्तमान परिस्थितियों में ब्रह्मचर्य अत्यन्त कठिन है। आजकल के सामाजिक वातावरण में मन में विकार और चंचलता उत्पन्न करने वाली बातें बहुत बढ़ गई हैं। इनमें अधिकांश बातें पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव से भारत में आई हैं। सभ्यता के विकास में स्वाद, शृंगार, विलास बढ़ रहा है। स्वादिष्ट भोजन खाने में अच्छा लगता है, किन्तु सादा भोजन ही स्वास्थ्य के लिये लाभदायक है। शृंगार स्त्रियों के योग्य है किन्तु पुरुषों को शोभा नहीं देता। विलास मन को चंचल और दुर्बल शरीर को बनाता है। ये तीनों ही ब्रह्मचर्य की साधना में बाधक हैं। किन्तु सभ्यता में ये ही बढ़ रहे हैं। बाजार को देखें तो स्वादिष्ट भोजन, सुन्दर वस्त्र, प्रसाधन, अलंकार आदि की वस्तुओं से ही भरा दिखाई देगा। इनके अतिरिक्त और कुछ मिलेगा तो मशीनें और औषधियाँ। मशीनें अधिकांश रोगों की जननी हैं। औषधियाँ रोगों की चिकित्सा करती हैं। दोनों ही ब्रह्मचर्य के विपरीत हैं।

आधुनिक सभ्यता का विकार और विलासपूर्ण वातावरण प्राचीन वन्य आश्रमों से पूर्ण भिन्न है। चारों ओर शृङ्गार और विलास का नग्न नृत्य दिखाई देता है, और पान की दूकानों से लेकर सिनेमाघर

तक स्त्रियों के उत्तेजक चित्रों की भरमार है। जिन्हें देखकर युवकों का मन सदैव चंचल रहता है। स्त्रियों और लड़कियों में भी शृङ्गार और सजावट का प्रदर्शन अधिक बढ़ता जा रहा है। वह भी उत्तेजना को बढ़ाता है। विद्यालयों में सहशिक्षा ब्रह्मचर्य में बाधक है। स्वतन्त्रता, समानता और आधुनिकता के नाम पर दिये जाने वाले तर्क सब छल हैं। उन सबके पीछे वासना छिपी रहती है। संस्कृति और कला के नाम पर होने वाले युवक समारोहों और अभिनयों में भी विलास का छल रहता है। साहित्य में भी शृङ्गार की बहुलता रही है। आधुनिक उपन्यासों, चित्रों और कहानियों की पत्रिकाओं में शृङ्गार का रूप अधिक नग्न होता गया है। ऐसे वातावरण में ब्रह्मचर्य का पालन आँधी में दीपक जलाने के समान कठिन है। इस वातावरण में प्रलोभनों और आकर्षणों से अपने मन को हटाकर ही इसमें रहते हुए भी जो अपने मन को संयमित रख सकता है वही उत्तम विद्या प्राप्त कर जीवन को सफल बना सकता है।

६८—विद्या की आत्मा और साधना

जीवन और शिक्षा का मूल आधार स्वास्थ्य है। स्वस्थ और सबल शरीर में ही समर्थ मस्तिष्क का विकास हो सकता है। स्वास्थ्य की आधार-भूमि पर विद्या के भव्य प्रासाद का निर्माण होता है। ज्ञान प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा और प्रेरणा विद्या की आत्मा है। मूलतः यह आत्मा प्रत्येक बालक में विद्यमान रहती है। किन्तु माता-पिता और गुरु के दमनपूर्ण शासन से वह मौलिक आत्मा मन्द हो जाती है। बचपन में गुरुजनों से समुचित सहायता न मिलने के कारण ज्ञान की तीव्र आकांक्षा जागरित नहीं होती। गुरुजनों की प्रेरणा बालकों की विद्या की सबसे बड़ी शक्ति है। इसी शक्ति से उनकी विद्या आगे बढ़ती है।

समुचित प्रेरणा न मिलने के कारण ही आपकी विद्या दुर्बल है। अब आप समर्थ और समझदार हैं। अपनी चेष्टा और सेवा से योग्य गुरु का सम्पर्क प्राप्त कर विद्या में प्रेरणा की आत्मा का संचार कर उसे सप्राण और सशक्त बनाइये।

भाषा, लिपि, विषय आदि क्षेत्रों में निरन्तर अभ्यास ही विद्या की व्यावहारिक साधना है, इस साधना में ही प्रेरणा की आत्मा साकार होती है। प्रेरणा और आकांक्षा की आत्मा से यह साधना सार्थक और सफल होती है। अभ्यास से सब कुछ सिद्ध होता है। अभ्यास हमारा यत्न अथवा उद्योग है। इस अभ्यास के द्वारा हम निरन्तर आगे बढ़ते हैं; हमारी योग्यता बढ़ती है और हमारी विद्या में उन्नति होती है। अभ्यास के लिये कर्म की क्षमता अपेक्षित है। आलस्य अभ्यास का शत्रु है अभ्यास के मार्ग में निरन्तर बढ़ते रहने से आपकी विद्या नित्य विकसित होती रहेगी।

६९—सन्तुलित विद्या

सन्तुलित भोजन के सम्बन्ध में आपने सुना होगा। डाक्टर प्रायः स्वास्थ्य के लिये सन्तुलित भोजन की सलाह देते हैं। सन्तुलित भोजन का अभिप्राय उस भोजन से है जिसमें शरीर और स्वास्थ्य के लिये आपेक्षित सभी तत्व विद्यमान हों। सन्तुलित भोजन से शरीर के सभी अंग स्वस्थ और सशक्त रहते हैं तथा अपना काम सुचारु रूप से करते हैं। भोजन के समान ही विद्या का सन्तुलित होना आवश्यक है। विद्या भी मन का भोजन है। उसके भी कई आवश्यक तत्त्व हैं। इन तत्वों का समुचित सन्तुलन न होने पर विद्या एकांगी हो जाती है और उसके कुछ अंग दुर्बल हो जाते हैं। दुर्बल होने के कारण ऐसी विद्या की दशा रोगी के समान रहती है। वह स्वस्थ व्यवहार के योग्य नहीं होता।

संतुलित विद्या के प्रमुख तत्व पांच हैं—श्रवण, स्वाध्याय, सहाध्याय, अध्यापन और अभ्यास। श्रवण का अर्थ गुरु से पाठ पढ़ना है। वह व्यक्तिगतरूप में नहीं किन्तु सामूहिक रूप में कक्षा में होता है। स्वाध्याय का अर्थ स्वयं अध्ययन करना है। यह सभी छात्र करते हैं। किन्तु श्रवण व स्वाध्याय जिस रूप में आज मिलते हैं उस रूप में उनका फल अधिक नहीं होता। श्रवण में गुरु के निकट सम्पर्क की प्रेरणा होने के कारण वह प्रभावहीन रहता है। इससे श्रवण की निष्फलता से उत्पन्न होने वाली दुर्बलता के कारण स्वाध्याय भी अधिक लाभदायक नहीं होता। सहाध्याय का अर्थ सहपाठियों का साथ पढ़ना है। इससे परस्पर विचार विनिमय के द्वारा विपय स्पष्ट होता है। इसकी प्रथा आजकल बहुत कम है प्रायः छात्र अकेले ही अलग अलग पढ़ते हैं। अध्यापन का अर्थ है अपने से छोटे छात्रों को पढ़ाना। इससे पिछली विद्या, पक्की, प्रकट और बुद्धि प्रखर होती है, तथा आत्म विश्वास बढ़ता है। आज के छात्रों में न इसकी प्रथा है और न क्षमता है। अभ्यास का अर्थ भापा और वाणी के द्वारा अभिव्यक्ति की साधना है। इसकी भी आधुनिक शिक्षा में कोई व्यवस्था नहीं है। रूखी सूखी रोटी के समान श्रवण और स्वाध्याय के आधार पर वर्तमान छात्र दुर्बल जीवन व्यतीत कर रहा है।

७०—प्राप्यवरान्निबोधत

उपनिषदों में छात्रों को सम्बोधित कर कहा है कि 'उठो, जागो, श्रेष्ठ जनों के पास जाकर उत्तम विद्या और चेतना प्राप्त करो।' उपनिपदों का यह आदेश विद्या का मूल मन्त्र है। इसमें विद्या की उन्नति और चेतना के जागरण का सर्वोत्तम साधन बताया गया है। यह साधन है—श्रेष्ठ जनों के पास जाकर उनसे उत्तम विद्या और

चेतना प्राप्त करना। उत्तम विद्या और चेतना अपने से श्रेष्ठजनों के पास ही मिल सकती है। जिनके पास हमसे अधिक है, वही हमें और दे सकते हैं। विद्या हमें अपने से प्राप्त नहीं हो सकती। गुरुजनों के ज्ञानकोष से ही हमें विद्या के रत्न मिल सकते हैं। यदि विद्या हमें अपने से प्राप्त हो सकती, तो भेड़ियों द्वारा जंगल में पालित बालक भी विद्वान् होते।

'गुरुजन' शब्द बहुत व्यापक है। उपनिषद् में 'वरान्' शब्द का प्रयोग हुआ है, जो और भी अधिक अर्थ पूर्ण है। 'वर' का अर्थ है 'श्रेष्ठ'। जो विद्या, बुद्धि, शील, संस्कृति आदि सभी बातों में हमसे बढ़कर है, वह पूर्ण अर्थ में 'श्रेष्ठ' है। ऐसे 'श्रेष्ठजन' ही सच्चे 'गुरुजन' हैं। वैसे आपसे बड़े सभी गुरुजन कहलाने के अधिकारी हैं। प्रायः गुरुजनों में गुण होते हैं। उनके समीप जाकर आपको उनसे गुण सीखने चाहिएँ। दोषों को ध्यान देने से कोई लाभ नहीं। इसीलिए 'छात्र' का अर्थ 'गुरु' के दोषों का 'आच्छादन' करने वाला किया जाता है। शिष्य की श्रेष्ठता भी गुरु के दोषों का छादन करती है। वह दोषों को उपेक्षणीय बना देती है। विद्वान् गुरु से निकट सम्पर्क के द्वारा तेजस्वी विद्या प्राप्त करो। सभी गुरुजनों से गुण सीखो। जो छोटे होकर भी श्रेष्ठ हैं, उनसे भी गुण ग्रहण करने चाहिएँ। प्रकृति और पशुपक्षिओं से भी आप गुण सीख सकते हैं। ज्ञान और गुण का सजग चेतना में अन्वय होने पर वे मनुष्य के व्यक्तित्व की विभूति बनते हैं।

७१–स्वाध्याय में मनन करें

गुरु-मुख से शास्त्र श्रवण करना तथा सभी गुरुजनों से गुण सीखना उत्तम विद्या का पहला साधन है। दूसरा साधन स्वाध्याय है। स्वाध्याय का अर्थ है स्वयं पढ़ना। गुरु से पढ़ने के बाद स्वयं एकान्त में उस पढ़े

हुऐ पाठ का मनन करना चाहिए। एकान्त में चित्त शान्त और स्थिर रहता है। यदि चंचल रहता है तो उसे अभ्यास द्वारा स्थिर बनाना चाहिये, अन्यथा विद्याध्ययन सम्भव नहीं हो सकता। एकान्त में स्थिर चित्त से मनन करने से विद्या दृढ़ होती है, गुरु से जो पढ़ते हैं वह बुद्धि में स्थिर रहता है। मनन से विचार में गम्भीरता भी आती है। ज्ञान के गम्भीर तत्व भी मनन में प्रस्फुटित होते हैं। किन्तु यह स्वाध्याय तभी सफल होता है जबकि इससे पूर्व गुरु के निकट सम्पर्क से विषय का स्पष्ट प्रकाशन हुआ हो। अन्यथा यह निष्फल श्रम रहता है जैसा कि प्रायः हो रहा है।

वैदिक शिक्षा में स्वाध्याय का अर्थ अपनी शाखा का अध्ययन करना है। वेदों की अनेक शाखाएँ हैं। उन सबका विस्तार बहुत है। कोई ब्रह्मचारी सभी शाखाओं का अध्ययन नहीं कर सकता। अतः वैदिक शिक्षा में यह नियम बनाया था कि 'अपनी शाखा का अध्ययन करना चाहिये।' (स्वाध्यायोऽध्येतव्यः)। आज आप वेद नहीं पढ़ते, फिर भी यह स्वाध्याय का नियम आपके लिये उपयोगी है। आप अपने विषय और परीक्षा से सम्बन्धित ग्रन्थों का ही विशेष अध्ययन करें। केवल मनोरंजन के लिये अनावश्यक पुस्तकों के अध्ययन में समय नष्ट न करें। सीमित होने पर भी यदि आपका अध्ययन गम्भीर होगा तो आपकी विद्या सफल होगी।

७२—सहाध्याय कीजिए

सन्तुलित विद्या का तीसरा तत्व सहाध्याय है। सहाध्याय का अर्थ है साथ साथ पढ़ना। एक ही कक्षा के दो चार छात्र आपस में मिलकर जब साथ साथ अध्ययन करते हैं तो वह सहाध्याय कहलाता है। पहले संस्कृत शिक्षा प्रणाली में इसकी बहुत प्रथा

थी। एक ही ग्रन्थ पढ़ने वाले छात्र गुरु से पढ़ने के वाद उसे मिलकर पढ़ते थे। इसे 'विचारना' कहते थे। इसका यह नाम वड़ा सार्थक है। गुरु मुख से श्रवण करने के वाद गुरु से पढ़े हुए को बुद्धि में स्पष्ट और स्थिर करना आवश्यक है। स्वाध्याय और सहाध्याय में उसको दुहराने पर वह स्पष्ट और स्थिर होता है। केवल स्वाध्याय में शंकाएँ, और कठिनाइयां कम प्रकट होती हैं। यह भी निश्चय नहीं होता कि जो हम समझते हैं वह ठीक है या नहीं।

जब चार साथी मिलकर पढ़ते हैं तो पद पद शंकाएँ और कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। अकेले में हम भ्रम में भी रह जाते हैं। किन्तु चार जनों में भ्रम को छिपाना सम्भव नहीं है। सहाध्याय में स्वयं समझने के साथ २ दूसरों को समझाने का भी प्रयत्न रहता है। दूसरों को समझाने में सब कठिनाइयाँ स्पष्ट हो जाती हैं, उसमें भ्रम नहीं रह सकता है। हम अकेले में भ्रम में रह सकते हैं। किन्तु सबके सामने न स्वयं भ्रम में रह सकते हैं और न दूसरों को भ्रम में रख सकते हैं। अस्तु साथ साथ मिलकर पढ़ने से विषय अधिक स्पष्ट हो जाता है। अतः सहाध्याय अत्यन्त लाभदायक है। आजकल इसकी प्रथा बहुत कम है। सभ्यता में जो अकेलापन वढ़ रहा है उसका प्रभाव शिक्षा पर भी है। प्रायः छात्र अकेले ही पढ़ाई करते हैं किन्तु अकेले की पढ़ाई में अनेक भ्रम व दोष रह जाते हैं। वे सहाध्याय से दूर हो जाते हैं। साथियों से प्रेमभाव वढ़ाकर सहाध्याय के द्वारा अपनी विद्या को स्पष्ट और स्थिर वनाइये।

७३—अध्यापक वनिये

सन्तुलित विद्या का चौथा तत्व अध्यापन है। अध्यापन का अर्थ दूसरों को पढ़ाना है। आप आश्चर्य करेंगे कि हम छात्र हैं। अभी

तो हम स्वयं पढ़ते हैं। हमारा अध्यापन से क्या सम्बन्ध है ? किन्तु इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। अध्यापन भी अध्ययन का एक आवश्यक अंग है। वर्तमान में शिक्षा में पराधीनता होने के कारण लोगों की यही धारणा है कि छात्र अपनी ही पढ़ाई करलें यही बहुत है, लोगों को पढ़ाने की बात ही दूर है। किन्तु वस्तुतः अध्यापन पढ़ने वाले छात्रों से इतनी दूर की बात नहीं है। अध्यापन एक प्रकार से अध्ययन भी है। दूसरों को पढ़ाने से विषय और सिद्धान्त पढ़ाने वाले को भी पहले की अपेक्षा अधिक स्पष्ट होते हैं। स्वयं पढ़ने में भ्रम भी रह सकता है। हम किसी बात को पूरी तरह स्पष्ट रूप से न समझने पर भी यह समझ लेते हैं कि हम समझ गये। दूसरों को समझाते समय यह स्पष्ट होता है कि हम सचमुच समझे या नहीं। दूसरों को हम भ्रम में नहीं रख सकते।

वास्तव में समझ की समस्या बड़ी विचित्र है। हम किसी बात को अच्छी प्रकार समझे या नहीं समझे इसको समझने के लिये भी कुछ समझ चाहिये। प्रायः मूर्खों को आत्मविश्वास बहुत अधिक होता है। समझ न होने के कारण उन्हें सन्देह अथवा तर्क नहीं होता। समझदारों को सन्देह उत्पन्न होते हैं। दूसरों को पढ़ाने में इन सन्देहों के लिये अधिक अवसर होता है। अतः दूसरों को पढ़ाने में विषय और अधिक स्पष्ट होता है। अध्यापक इस बात को जानते हैं कि बार बार छात्रों को पढ़ाते रहने से उनको विषय का कितना अधिक स्पष्ट और गम्भीर ज्ञान हो जाता है। सहाध्याय में कुछ अध्यापन का भी अंश रहता है। सहपाठी स्वयं समझने के साथ साथ एक दूसरे को भी समझाने का प्रयत्न करते हैं। अपने से छोटे छात्रों को कभी २ थोड़ा अवकाश निकालकर पढ़ाइये इससे आपका पिछला ज्ञान स्पष्ट होगा। बुद्धि तीव्र होगी, आत्म विश्वास बढ़ेगा और वर्तमान शिक्षा में भी लाभ होगा।

७४–अभ्यास से विद्या दृढ़ होती है

सन्तुलित विद्या का पांचवा तत्व अभ्यास है। अभ्यास का अर्थ दुहराना है। समय समय पर पिछली पढ़ी हुई बातों को दुहराते रहने से वे स्मृति में अधिक स्थिर हो जाती हैं। बहुत दिन तक न दुहराने से वे भूल जाती हैं। इसलिए संस्कृत में कहावत प्रचलित थी कि 'अनभ्यासे विषं विद्या' अर्थात् बिना अभ्यास के विद्या विष के समान हानिकारक होती है। वस्तुतः विद्या अमृत है (अमृतं तु विद्या), किन्तु अभ्यास के बिना वह विष के समान हो जाती है। अतः पिछली विद्या का निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये। आजकल के छात्र समझने की अपेक्षा रटने से अधिक काम चलाते हैं। अतः वे पाठों को बार बार दुहरा कर याद करते हैं। किन्तु इस अभ्यास में समझ का काम कम होने के कारण यह अधिक लाभदायक नहीं होता। अनेक बार दुहराई हुई बातें भी परीक्षा के बाद भूल जाती हैं।

अतः समझकर अभ्यास करना चाहिये। समझकर अभ्यास करने से विद्या बुद्धि में दृढ़ होती है और कभी नहीं भूलती। जो भूल जाती है उस विद्या के उपार्जन का श्रम निष्फल जाता है। बुद्धिपूर्वक जो अभ्यास किया जाता है उसमें पुरानी बातों में भी प्रति बार नए नए रहस्य प्रकट होते हैं। गीता और रामायण का अभ्यास करने वाले जानते हैं कि बार बार पढ़ने से कितने नये नये विचार उठते हैं। पुराने पाठ को प्रति बार नई भावना से पढ़ना चाहिये। इससे अध्ययन में स्फूर्ति रहती है और ज्ञान में गम्भीरता आती है। अभ्यास के अनेक रूप हैं। स्वाध्याय, सहाध्याय और अध्यापन में भी एक प्रकार से अभ्यास होता है। पढ़ने के अतिरिक्त कभी कभी लिख कर भी अभ्यास करना चाहिये। बिना पुस्तक देखे लिखने से विषय निखरता है और परीक्षा के लिये पूर्वाभ्यास हो जाता है।

७५–विद्या और वाणी

विद्या का वाणी से घनिष्ठ सम्बन्ध है। विद्या के साथ साथ वाणी भी पशुओं की तुलना में मनुष्य की एक विशेपता है। वाणी के माध्यम से ही विद्या की अभिव्यक्ति होती है। अध्यापन का माध्यम भी वाणी है। कण्ठ का शब्द वाणी का सामान्यतः परिचित रूप है। किन्तु भारतीय मनीषियों ने वाणी के मर्म और विद्या के साथ उसके सम्बन्ध को अधिक गम्भीर तथा पूर्ण रूप में समझा है। साधारणतः विद्या को ज्ञान और वाणी को उसकी शब्दमयी अभिव्यक्ति समझा जाता है। एक चेतना का धर्म है और दूसरा इन्द्रियों का व्यापार है। किन्तु भारतीय दर्शन में विद्या और वाणी को एक रूप माना गया है। वाणी का एक ही रूप नहीं है, जिसे हम कण्ठ से उत्पन्न करते और कानों से सुनते हैं।

कण्ठ से उत्पन्न होने वाला मुखर शब्द वाणी का चौथा रूप है। यह वाणी का सबसे स्थूल रूप है। इसके पूर्व वाणी के तीन सूक्ष्म रूप और हैं। कण्ठ की मुखरवाणी को वैखरी वाणी कहते हैं। इसके पूर्व परा, पश्यन्ती और मध्यमा ये तीन वाणी के सूक्ष्म रूप हैं। परा तो ब्रह्मस्वरूप है; वह निर्विकल्प चेतना है। यही वाक्यपदीय का शब्द ब्रह्म है। पश्यन्ती में विचार और शब्द एक रूप होकर आत्मा की दृष्टि बन जाते हैं। यह विचार का वह रूप है, जिसमें 'उसकी 'सूक्ष्म शब्द' में अभिव्यक्ति होती है। मध्यमा मूक वाणी है, जिसमें विचार आन्तरिक वाणी में अभिव्यक्त होता है। यह विचार और मुखर शब्द के मध्यगत होने के कारण 'मध्यमा' कहलाती है। मध्यमा के मार्ग से ही वैखरी को पश्यन्ती का प्रकाश मिलता है और पश्यन्ती का प्रकाश वैखरी को ज्योति करता है। मौन मनन मध्यमा का ही व्यापार है। आपकी विद्या प्रायः वैखरी वाणी में ही सीमित रहती है।

अध्यापकों के भाषण कान से सुने जाते हैं। आप पढ़ते अधिक हैं, मनन कम करते हैं। मध्यमा और पश्यन्ती के मार्ग से आपकी विद्या परा के प्रकाश तक बहुत कम पहुँचती है। इसीलिए वह तेजहीन रहती है। किन्तु विद्या केवल शब्द के ऊपरी अर्थ एवं वाणी के मुखर रूप में ही पूर्ण नहीं है। उसका एक सूक्ष्म और गम्भीर मर्म है, जो वाणी के अन्य रूपों में प्रकाशित होता है। आपके मनन और गुरु के अत्मीय सम्पर्क से अन्तर्मुखी होकर ही विद्या को पश्यन्ती की दृष्टि और परा का तेज प्राप्त हो सकता है।

७६—भाषा का चमत्कार

भाषा विद्या-मन्दिर की देहली है। पहले भाषा से ही विद्या की साधना आरम्भ होती है। विद्यारम्भ को अक्षरारम्भ भी कहते हैं। अक्षरों का एक निश्चित आकार और उच्चारण होता है। अक्षरों से शब्द, वाक्य और ग्रन्थ बनते हैं। अक्षरों का आकार 'लिपि' कहलाता है, जो कागज आदि पर अंकित किया जाता है। अक्षरों का उच्चारण 'ध्वनि' कहलाता है, जो कण्ठ से उत्पन्न होती है। आजकल आरम्भ से ही बालकों की भाषा में दोष रहता है। उनको अक्षरों की बनावट व उच्चारण सही सही नहीं सिखाया जाता। यही दोष ऊँची कक्षाओं तक चला जाता है। ऊँची कक्षाओं के छात्र भी शब्दों का ठीक उच्चारण नहीं करते और भाषा अशुद्ध लिखते हैं। आरम्भ में बच्चों को शुद्ध भाषा एवं सुन्दर लेख सिखाने के लिये काफी ध्यान और परिश्रम की आवश्यकता है। अध्यापक इतने ध्यान नहीं देते। यह कितना कठिन है, इसका अनुमान माता पिता स्वयं बच्चों को भाषा और लेख सिखाने का अनुमान करके कर सकते हैं। अध्यापक को इतने ध्यान और परिश्रम के लिये समाज क्या आदर दे रहा है।

शब्दों का अर्थ भाषा को साहित्य और व्यवहार का माध्यम बनाता है। अर्थ की शक्ति से भाषा समर्थ और सुन्दर बनती है। ग्रन्थों में आप सुन्दर और समर्थ भाषा देखते हैं। किन्तु आपकी अपनी भाषा कितनी समर्थ और सुन्दर है। गुरु के निकट सम्पर्क में रह कर पढ़ने पर ही आपको भाषा की शक्ति और उसके सौन्दर्य का बोध होगा। भाषा की शक्ति और उसका सौन्दर्य कोई स्थूल वस्तुएं नहीं हैं। विद्या के सूक्ष्म तत्व हैं, जो योग्य गुरु की करुणा के प्रकाश में ही दृष्टिगत हो सकते हैं। गुरु की देख-रेख में सुन्दर लिपि और शुद्ध उच्चारण का अभ्यास कीजिऐ। उन्हें लिखकर दिखाइये। सामने बैठकर जब आपकी अशुद्धियों का संशोधन होगा और एक एक अशुद्धि की व्याख्या होगी तभी आपकी भाषा शुद्ध हो सकेगी। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में इसकी कोई व्यवस्था नहीं है। गुरु की सेवा द्वारा आप स्वयं इसकी व्यवस्था कीजिऐ। भाषा की सुन्दरता और शक्ति विद्या में उन्नति का प्रथम चरण है।

७७—लिखने का अभ्यास कीजिए

प्राचीनकाल में विद्या में वाणी का व्यापार अधिक था। आदि काल में तो पुस्तकें भी नहीं थीं। कागज का आविष्कार नहीं हुआ था। हजारों वर्ष तक चारों वेद कण्ठ में रहते थे और वाणी के द्वारा ही पढ़ाए जाते थे। कान से सुनकर सीखने के कारण ही वेदों को 'श्रुति' कहते थे। लिखने की प्रथा रहने पर भी मध्यकाल में लिखने का चलन बहुत कम था। संस्कृत के विद्वान् पुस्तकों से ही पढ़ते और पढ़ाते थे। परीक्षा भी मौखिक ही होती थी, लिखकर नहीं होती थी। किन्तु आज कल परीक्षा लिखकर होती है। परीक्षा में लिखना भी बहुत पड़ता है। आपके उत्तर के विचार-तत्व, भाषा शैली आदि के अनुसार ही अंक दिए जाते हैं और उन पर ही परीक्षाफल निर्भर रहता है।

अस्तु वर्तमान शिक्षा में लिखने का काम बहुत है। अतः लिखने की शक्ति बढ़ाना बहुत आवश्यक है। भाषा का शुद्ध एवं सुन्दर होना परीक्षा में लाभदायक है। भाषा की शुद्धता और अभिव्यक्ति का सौन्दर्य योग्य गुरु की देखरेख में पढ़ने और लिखने से ही प्राप्त हो सकते हैं। लिखने की शक्ति अभ्यास से बढ़ती है। अच्छे ग्रन्थों से नित्य एक पृष्ठ नकल करने से सुन्दर लिपि और अच्छी भाषा दोनों सीखने में बहुत सहायता मिलेगी। इस अभ्यास का फल अनुभव से ही विदित होगा। पुस्तकों से अच्छे लेख नकल करने से भी भाषा की शक्ति बढ़ती है। अच्छी अभिव्यक्ति का अभ्यास स्वतन्त्र रूप से लिखने के द्वारा होता है। अपने पाठ्य विषयों के प्रश्न, अपने मित्रों को पत्र, दूसरों के पत्र आदि लिखने से अभिव्यक्ति का अच्छा अभ्यास होता है। उक्त सभी रूपों में खूब लिखने का अभ्यास करने से लिखने की शक्ति बढ़ती है। इसमें गुरु की देखरेख और संशोधन का योग मिलने पर भाषा के सुवर्ण में सुगन्ध मिल जाती है।

७८—परिश्रम का फल

प्रायः कहा जाता है कि आजकल के छात्र पढ़ाई में परिश्रम नहीं करते। किन्तु यह सत्य नहीं है। अधिकांश पढ़ाई में परिश्रम करते हैं। बहुत से छात्र अधिक परिश्रम भी करते हैं। वर्तमान शिक्षा की हीन दशा का कारण यह नहीं है कि आजकल के छात्र परिश्रम नहीं करते। इसके विपरीत इस शिक्षा की एक अद्भुत विडम्बना यह है कि यद्यपि अधिकांश छात्र पढ़ाई में काफी परिश्रम करते हैं, फिर भी परीक्षाफल बहुत खराब रहता है। अनेक छात्र दिन-रात परिश्रम करने पर भी परीक्षा में असफल रहते हैं। बहुत से छात्र अत्यधिक परिश्रम करने पर तृतीय श्रेणी से पास होते हैं।

इतने परिश्रम का इतना हीन फल क्यों होता है ? इसका क्या कारण है ? इसका कारण यह है कि यह परिश्रम समझ के साथ नहीं किया जाता। इसमें से अधिकांश परिश्रम विषय को विना समझे पुस्तकों को रटने में किया जाता है। विना समझे हुए किसी चीज़ को रटने में बहुत परिश्रम होता है। समझ लेने पर वह उसकी अपेक्षा बहुत कम परिश्रम से याद हो जाती है। बहुत से छात्र पुस्तकों को कई बार पढ़ते हैं, किन्तु वे उनको समझते नहीं। विना समझे पढ़ने का परिश्रम व्यर्थ जाता है। ऐसे छात्र केवल इस विचार से ही प्रसन्न रहते हैं कि हमने उस पुस्तक को इतनी वार पढ़ा है, यद्यपि उनके पारायणों से कोई लाभ नहीं होता। पढ़ने में परिश्रम करने की आवश्यकता है। किन्तु वह परिश्रम सार्थक होना चाहिये। यह देखना चाहिये कि परिश्रम से हमारे ज्ञान में क्या उन्नति हो रही है। केवल परिश्रम अच्छे फल के लिये पर्याप्त नहीं है। परिश्रम के साथ साथ समझना भी आवश्यक है। प्रतिभा, प्रेरणा, तेज, अभ्यास, साधना, आदि से संयुक्त होकर ही परिश्रम श्रेष्ठ विद्या में सफल होता है। सुन्दर भाषा, प्रभावशाली अभिव्यक्ति और गम्भीर विचार के द्वारा परिश्रम उत्तम परीक्षा फल देता है।

७६—स्मृति और बुद्धि

स्मृति और बुद्धि मानवीय चेतना के दो मुख्य रूप हैं। दोनों ही मानव जीवन तथा विद्याध्ययन में उपयोगी हैं। दोनों एक दूसरे से विल्कुल भिन्न नहीं हैं, क्योंकि दोनों एक ही चेतना के रूप हैं। दोनों में धारणा शक्ति होती है। स्मृति का तो अर्थ ही धारणा है। हमें कुछ स्मरण रहता है, उसका यही अर्थ है कि वह हमारी चेतना में ठहरता है। बुद्धि के द्वारा हम जो समझते हैं, वह भी हमारी चेतना में ठहरता है। उसमें भी स्मरण का अंश रहता है। अस्तु, स्मृति मस्तिष्क की अधिक व्यापक

शक्ति है, जो समझ में नहीं आता वह भी याद रह सकता है। आजकल यह स्मृति ही छात्रों का सहारा बन रही है। वे रटकर परीक्षा पास कर रहे हैं। छोटे बालकों में आरम्भ में स्मृति ही विकसित होती है, बुद्धि का विकास धीरे धीरे बड़े होने पर होता है। बाल्य और किशोर अवस्था में स्मृति अधिक तीव्र होती है। आयु बढ़ने पर स्मृति मन्द होती जाती है। बुद्धि का उत्कर्ष यौवन में पूर्ण होता है। वृद्धावस्था में दोनों शक्तियाँ मन्द हो जाती हैं।

विद्याध्ययन में स्मृति और बुद्धि दोनों का समान महत्व है। किन्तु उनका क्षेत्र अलग अलग है। एक का काम दूसरी से नहीं लेना चाहिए। स्मृति का क्षेत्र उन तथ्यों और बातों में जिनमें कोई समझने की बात नहीं है। वस्तुओं, व्यक्तियों, स्थानों के नाम, घटनाओं की तिथियाँ आदि ऐसी ही बातें हैं। इन्हें याद रखने में बुद्धि क्या सहायता दे सकती है? किन्तु सिद्धान्त और तत्व, नियम, विचार आदि बुद्धि के द्वारा समझने की चीज़ें हैं। समझ लेने पर ये सरलता से याद हो जाती हैं। बुद्धि के द्वारा समझी हुई बातें कभी भूलती भी नहीं हैं। बुद्धि की धारणा शक्ति साधारण स्मृति से अधिक स्थायी है। याद की हुई चीज़ें कुछ समय बाद भूल जाती हैं। समझने की बातों को रटना स्मरणशक्ति का दुरुपयोग है। इससे मस्तिष्क दुर्बल होता है। पुस्तकों की भाषा को रटना तो शक्ति और समय का सबसे अधिक अपव्यय है। बुद्धि से विषय के सिद्धान्तों का सार समझ लेना पर्याप्त है। उन्हें अपनी भाषा में लिखने की शक्ति बढ़ानी चाहिये। इससे विद्या का भार बहुत हल्का हो जाता है, थोड़े परिश्रम से अच्छा परीक्षाफल होता है।

८०—सरस्वती का हंस

भारतीय संस्कृति में सरस्वती विद्या की देवी मानी जाती है। सरस्वती का वर्ण शुभ्र है। शुभ्र वर्ण पवित्रता का सूचक है। विद्या

भी पवित्र है। गीता में ज्ञान को सबसे पवित्र माना है। (नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते—गीता)। सरस्वती का वाहन हंस है। चित्रों में सरस्वती हंस वाहिनी के रूप में अंकित की जाती हैं। यह विद्या की सांस्कृतिक कल्पना है। सरस्वती और हंस दोनों प्रतीक हैं; जिनका अर्थ समझने पर ही विद्या का रहस्य समझा जा सकता है। दर्शन शास्त्र में प्रकृति के तीन गुणों में सतोगुण का वर्ण शुभ्र माना गया है। सतोगुण के बढ़ने से ही विद्या और बुद्धि बढ़ती है। अतः सच्चरित्र और सात्विक जीवन का विद्या से घनिष्ट सम्बन्ध है। हंस भी शुभ्र होता है। इसके अतिरिक्त हंस दूध और पानी को अलग अलग कर देता है। अलग २ करने को 'विवेक' कहते हैं।

विवेक का विद्या में महत्वपूर्ण स्थान है। तीव्र बुद्धि हंस के समान ही शब्दों के अर्थ और सिद्धान्त-तत्वों को एक दूसरे से अलग कर देती है। मनुष्य और पशु में, धर्म और दर्शन में, कला और विज्ञान में, सभ्यता और संस्कृति में क्या अन्तर है? इस प्रकार ज्ञान-क्षेत्र के अनेक भावों, विचारों, प्रत्ययों, शब्दों, सिद्धान्तों आदि के परस्पर अन्तर को समझना ही विवेक है। इनके अन्तर को समझने पर ही इनका स्वरूप भी समझा जा सकता है। समानता और अन्तर के आधार पर ही परिभाषाएँ बनती हैं। अतः विवेक ही ज्ञान का मूल आधार है। इसलिये व्यवहार में 'विवेक' का अर्थ 'ज्ञान' बन गया है। इसी विवेक के राजहंस पर सरस्वती हमारी आत्मा के दिव्य लोक में विराजती है। इसी विवेक का विकास विद्या की वास्तविक वृद्धि है।

८१—ज्ञान का अनुराग

विद्या का मुख्य लक्ष्य बुद्धि का विकास और ज्ञान का उपार्जन है। यदि सब नहीं तो बहुत कुछ विद्या जीवन में उपयोगी भी होती है। शिक्षा में

कुछ विषयों का सम्बन्ध नौकरियों एवं व्यवसायों से भी है। किन्तु विद्याध्ययन करते समय सभी छात्रों के जीवन का व्यावहारिक लक्ष्य स्पष्ट नहीं रहता। उन्हें यह निश्चित नहीं रहता कि वे जीवन में क्या करेंगे। विद्यालय में जो छात्र ज्ञान उपार्जित करते हैं; उसकी उपयोगिता उनके जीवन में स्पष्ट नहीं होती। अतः उनके ज्ञानोपार्जन में प्रेरणा का अभाव रहता है। फिर सभी ज्ञान उपयोगी नहीं होता। विद्यालयों में जितने विषय छात्र पढ़ते हैं, सभी पूरी तरह व्यवहार में काम नहीं आते। कुछ विषयों का केवल थोड़ा सा अंश उपयोग में आता है।

अस्तु बहुत कुछ ज्ञान निरुपयोगी है। किन्तु बिना उपयोग के उसमें उपार्जन में रुचि होना कठिन है। इसलिये विद्याध्ययन में प्रायः रुचि की समस्या होती है। यह ठीक है कि बिना रुचि के विद्याध्ययन करना कठिन है। बिना रुचि का कार्य अच्छा नहीं होता। अच्छी पढ़ाई के लिये उसमें रुचि होना आवश्यक है। किन्तु इस रुचि के लिये सभी विषयों में और समस्त ज्ञान में उपयोगिता खोजना उचित नहीं। ज्ञान का महत्व अपने आपमें है। उससे बुद्धि का विकास और व्यक्तित्व का उत्कर्ष होता है। उपयोगिता एक प्रकार का स्वार्थ है। कुछ निःस्वार्थ भाव होने पर ही ज्ञान में भी रुचि हो सकती है। केवल स्वार्थमय दृष्टिकोण रखने पर न ज्ञान में अनुराग हो सकता है और न विद्या में उन्नति हो सकती है।

८२–बुद्धि के धरातल

विद्या को हम बुद्धि का विकास और ज्ञान का उपार्जन कह सकते हैं। बुद्धि के विकास का मार्ग एक सोपान क्रम है। वह एक सड़क के समान उसी धरातल पर रह कर आगे नहीं बढता जाता। वह एक सीढ़ी के समान आगे बढ़ने के साथ ऊँचा भी उठता जाता है।

बुद्धि के क्षेत्र का विस्तार होने के साथ २ उसका धरातल भी ऊँचा उठता जाता है। यही बुद्धि के विकास का रूप है। बुद्धि के विकास के उस रूप को समझने पर ही विद्या की उन्नति हो सकती है।

बुद्धि का सबसे पहला धरातल ऐन्द्रिक और स्थूल है। इन्द्रियों के द्वारा स्थूल और उपस्थित वस्तु का बोध होता है। यह बुद्धि की पहली सीढ़ी है। बालक ज्ञान की इस सीढ़ी पर अपने आपको चलाता है। इन्द्रिय-विषयों का ज्ञान वह अपनी चेष्टा से प्राप्त कर लेता है। उसमें दूसरों की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। बालकों की शिक्षा ऐन्द्रिक आधार पर ही होनी चाहिये। किन्तु सम्पूर्ण शिक्षा ऐन्द्रिक और स्थूल धरातल पर ही नहीं होती। ऊँची अवस्था में जिन वस्तुओं का ज्ञान कराया जाता है वे सब छात्रों के सामने उपस्थित नहीं हो सकती। अनुपस्थित वस्तुओं के विषय में बात करते समय हमें कल्पना से काम लेना पड़ता है। कल्पना की शक्ति शिक्षा का प्रमुख अवलम्ब है। यह विद्या का दूसरा सोपान है। आगे चल कर सूक्ष्म सिद्धान्तों और तत्वों के विचार तथा उनके सम्बन्ध में तर्क का क्षेत्र आता है। दर्शन का इस क्षेत्र में प्रभुत्व है। सूक्ष्म विचार और तर्क की क्षमता के बिना ऊँची कक्षाओं के विषय भली भाँति समझ में नहीं आ सकते।

८३—बुद्धि को तीव्र बनाइये

भाषा विद्या का माध्यम है। भाषा के माध्यम से बुद्धि और ज्ञान के उत्कर्ष के रूप में विद्या का विकास होता है। बुद्धि ज्ञान की शक्ति है। इसी शक्ति के द्वारा ज्ञान की सम्पत्ति उपार्जित की जाती है। ज्ञान की शक्ति का उपार्जन बुद्धि की शक्ति पर निर्भर है। अतः

बुद्धि अधिक महत्वपूर्ण है। दुर्भाग्य की बात है कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में बालकों की शिक्षा में भाषा के अभ्यास एवं बुद्धि के विकास के पूर्व ही पुस्तकों और विषयों का भार लाद दिया जाता है। बालक को भाषा का समुचित ज्ञान नहीं हो पाता, तब तक अनेक विषय उसके लिये भार हो जाते हैं वह पुस्तकों और विषयों के भार से दबा रहता है। उसकी बुद्धि मन्द हो जाती है। माता-पिताओं का कर्त्तव्य है कि बालकों की बुद्धि विकसित करने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार जलते हुये दीपक के स्पर्श से दूसरा दीपक जलता है उसी प्रकार बड़ों की विकसित बुद्धि के साथ साक्षात् सम्पर्क के द्वारा बालकों की बुद्धि विकसित होती है।

ऊँची कक्षाओं के विद्यार्थियों को बुद्धि विकसित करने का प्रयत्न स्वयं करना चाहिये। भाषा एवं बुद्धि की दुर्बलता के कारण पुस्तकों और विषयों का भार उनके लिये भी दुर्वह है। वे भी उससे दब रहे हैं। दिन रात पढ़ कर भी न उनकी योग्यता बढ़ रही है और न उनका परीक्षा फल ही ठीक रहता है। इसका कारण बुद्धि की दुर्बलता है। बुद्धि को तीव्र बनाइये। बुद्धि के तीव्र होने पर पुस्तकें और विषयों का अध्ययन सरल हो जाता है, थोड़े समय में अधिक काम हो सकता है और थोड़े परिश्रम का फल भी अधिक होता है। बड़ी कक्षा के छात्रों के लिये भी बुद्धि में विकास का मार्ग गुरुजनों का सम्पर्क है। श्रद्धा, विनय और सेवा के द्वारा योग्य गुरु का सम्पर्क प्राप्त कीजिये। उनके साथ विद्या सम्बन्धी चर्चा कीजिये। उनकी दीप्त प्रतिभा और विकसित बुद्धि के सम्पर्क से आपकी प्रतिभा का दीपक भी दीप्त हो जायगा तथा आपकी बुद्धि इतनी तीव्र हो जायगी कि जो विषय और ग्रन्थ आपको भार मालूम होते हैं वे ही खेल एवं विनोद बन जायेंगे।

८४–विचारपूर्ण लेख पढ़िए

अच्छे लेखकों का सम्पर्क भी योग्य गुरुओं के सम्पर्क के समान ही हित-

कर होता है। दोनों में केवल इतना अन्तर है कि योग्य गुरु का सम्पर्क अधिक सजीव होता है। चेतना की प्रेरणा इससे अधिक सहज और तीव्र रूप में प्राप्त होती है। लेखकों का सम्पर्क हमें उनकी रचनाओं में प्राप्त हो सकता है। पुस्तकालय में आपको अच्छे ग्रन्थों और अच्छी पत्रिकाओं के रूप में यह सम्पर्क सहज ही मिल सकता है। सभी अच्छे ग्रन्थ और अच्छी पत्रिकाएँ पढ़ना आपके लिये लाभदायक है। किन्तु विषय और उनकी पाठ्य पुस्तकें बहुत होने के कारण आपको बाहरी पुस्तकें और पत्रिकायें पढ़ने का अधिक अवकाश नहीं मिल सकता। अतः उनमें से उपयोगी चुनाव करना आवश्यक है। कहानी, कविता, लेख आदि सब समान रूप से लाभदायक नहीं हैं। उनके पढ़ने से भिन्न भिन्न प्रकार का लाभ होता है।

कहानी रोचक अधिक होती है। अतः कहानी पढ़ने का शौक अधिक बढ़ रहा है। आदिकाल से लोग कहानियां कहते आ रहे हैं। आजकल साहित्य में भी कहानियों और उपन्यासों के पढ़ने से हमें सामाजिक जीवन का ज्ञान होता है। किन्तु भाषा की ओर हम अधिक ध्यान नहीं देते। घटनाओं में ही हमारी रुचि अधिक रहती है। अतः कहानियों और उपन्यासों का पढ़ना भाषा को सुन्दर और विचार को गम्भीर बनाने में सहायक नहीं होता। कविता में भाव की प्रधानता होती है। कविता पढ़ने से भावों के सुन्दर संस्कार जागरित होते हैं, किन्तु कविता की भाषा सबके व्यवहार की भाषा नहीं होती। हम साधारणतः कविता में नहीं लिखते। अतः भाषा और विचार की दृष्टि से कविता भी अधिक लाभदायक नहीं। भाषा को सशक्त और विचार को उन्नत बनाने के लिए अच्छे लेखकों के विचारपूर्ण लेख पढ़ना सबसे अधिक लाभदायक है। ऐसे लेख सभी अच्छी पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। कविता और कहानी को छोड़कर पत्रिकाओं में से लेख

पढ़िये। दैनिक पत्रों का सम्पादकीय पृष्ठ भी भाषा और विचार की दृष्टि से उपयोगी होता है।

८५–विषय को समझिये

आजकल की शिक्षा में सभी कक्षाओं में अनेक विषय पढ़ाये जाते हैं। उन विषयों की अनेक पुस्तकें होती हैं। उन पुस्तकों की भाषा अधिकांश छात्रों को कठिन प्रतीत होती है। इसका कारण यह है कि बचपन से भाषा का अच्छा अभ्यास न होने के कारण उनकी भाषा दुर्बल है। बुद्धि का भी समुचित विकास न होने से विषयों एवं ग्रन्थों को समझना और भी कठिन हो जाता है। परिणाम यह होता है कि अधिकांश छात्र बिना समझे ही पुस्तकों को रटते हैं। अध्यापक कक्षाओं में जो पढ़ाते हैं वह भी भाषा और विचार की कठिनाई के कारण बहुत कम समझ में आता है। पाठ्य-पुस्तकें आकार में बड़ी भी होती हैं। अतः अनेक छात्र बाजार में मिलने वाली प्रश्नोत्तर की पुस्तकों से चुने हुए उत्तर रटकर काम चलाते हैं। ऐसा करने से कुछ छात्र तृतीय श्रेणी में पास भी हो जाते हैं, किन्तु इस प्रणाली से परीक्षा में अच्छी श्रेणी नहीं मिल सकती।

अच्छी श्रेणी में परीक्षा पास करने के लिये विषय को समझना आवश्यक है। प्रत्येक विषय के कुछ सिद्धान्त और मूलतत्व होते हैं। उनके समझ लेने पर विषय को विस्तार से समझना सरल हो जाता है। किन्तु सिद्धान्त एवं मूलतत्व सूक्ष्म और गम्भीर होते हैं। जिस भाषा में ये व्यक्त किये जाते हैं वह भाषा भी अधिक परिभाषिक एवं कठिन होती है। अतः जहाँ विषयों को समझ लेना, पढ़ाई के भार को बहुत अधिक हलका बना देना है और परीक्षा में अच्छा फल सम्भव बनाता है, वहाँ वह कठिन भी है। भाषा के अभ्यास एवं बुद्धि के

विकास के द्वारा विषय को समझना सुगम हो जाता है। गुरु का सम्पर्क इसमें अधिक सहायक होता है। गुरु के निकट संकेत से विषय का गम्भीर तत्व भी सुबोध बन जाता है। विषय को समझने का प्रयत्न कर अपनी पढ़ाई का भार हलका और परीक्षाफल अच्छा बनाइये।

८६–प्रथम श्रेणी का मार्ग

योग्यता चाहे परीक्षा का सही मापदण्ड न हो किन्तु वर्तमान प्रणाली में उसका जो महत्व है उसे स्वीकार करके चलना होगा। अतः जहाँ एक ओर समुचित शिक्षा की दृष्टि से स्वास्थ्य, बुद्धि, ज्ञान, चरित्र आदि का विकास वाञ्छनीय है वहाँ दूसरी ओर परीक्षा में उत्तम श्रेणी आना भी आवश्यक है। शिक्षा के इन दोनों मार्गों में कोई विरोध भी नहीं है। बुद्धि का विकास और अच्छी भाषा का अभ्यास एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति का अधिकार होने पर उत्तम विद्या के साथ उत्तम श्रेणी भी सरलता से प्राप्त हो सकती है। परीक्षा में चाहे आपकी सम्पूर्ण योग्यता को अवकाश न मिलता हो, फिर भी बुद्धि, योग्यता और कुशलता द्वारा उत्तम श्रेणी सहज ही प्राप्त हो सकती है।

जो लोग यह समझते हैं कि उत्तम श्रेणी अधिक परिश्रम का फल है वे भ्रम में हैं। विद्याध्ययन के लिये परिश्रम की आवश्यकता है किन्तु केवल परिश्रम से न उत्तम विद्या प्राप्त हो सकती है और न अच्छी श्रेणी मिल सकती है। अच्छी श्रेणी के लिए परिश्रम के साथ साथ कुछ और बातों की भी आवश्यकता है। इन बातों के होने पर ही परिश्रम सफल होता है, अन्यथा अधिक परिश्रम करने वाले छात्र भी फेल होते हैं अथवा तृतीय श्रेणी में पास होते हैं। इन बातों में स्वच्छ लिपि, सुन्दर भाषा, प्रभावशाली अभिव्यक्ति, व्यवस्थित विचार, विकसित बुद्धि,

और ऊँचा धरातल मुख्य हैं। गुरु के सम्पर्क, सन्तुलित विद्या, अभ्यास और साधना के द्वारा आपकी इन सभी बातों में कुशलता हो सकती है और आपको उत्तम श्रेणी मिल सकती है।

८७–विद्या तप है।

विद्या बड़ी कठिन साधना है। यह कोई सुखद अथवा सहज कर्म नहीं वरन बड़ा कठिन कार्य है। इसीलिये विद्या की साधना के लिये इतने कठिन प्रयत्न और परिश्रम की आवश्यकता होती है। यदि विद्याध्ययन इतना सहज कर्म होता तो सभी लोग उसे सरलता से कर सकते। विद्या में मनुष्य की स्वाभाविक रुचि नहीं होती। इसीलिये अध्यापक भी बहुत कम पढ़ते हैं, छात्रों की तो बात ही क्या है। विद्या का लाभ भी स्थूल और स्पष्ट नहीं है। अतः जिस प्रकार कठिन होने पर भी कुछ लाभ के कार्यों में लोगों की लगन होती है वैसी लगन भी विद्या में होना कठिन है। विद्या मानसिक श्रम है। शारीरिक श्रम भी कठिन होता है। किन्तु मनसिक श्रम और भी कठिन होता है। प्रारम्भ की दुर्बलता के कारण वह अत्यधिक कठिन बन जाता है।

तप के समान कठिन होने के कारण ही प्राचीन भारत में विद्या का दृष्टिकोण ऐसा साधनामय बनाया था। ब्रह्मचर्य का पालन कर तपस्या पूर्वक विद्यार्थी आश्रमों में पढ़ते थे। आज की सभ्यता में सुख का मोह बढ़ रहा है। छात्रों के लिये भी सुख-सुविधाओं से पूर्ण छात्रावास बन रहे हैं। इससे कोई हानि नहीं है। यदि इनके कारण छात्र कोमल, कर्मभीरु और विलासी न बनें। किन्तु सुविधाएँ भी विद्याध्ययन की कठिनाई को सरल नहीं बना सकती। शास्त्रकारों का मत है कि सुख चाहने वाले को विद्या प्राप्त नहीं हो सकती। विद्यार्थी को सुख से

मोह नहीं करना चाहिये । कहावत यह भी है कि विद्या को कोई चुरा नहीं सकता। अभिप्राय: यह है कि जिस प्रकार हम चोरी और अन्याय से भी धन प्राप्त कर धनी असम्भव हैं, उसी प्रकार विद्वान नहीं वन सकते। विद्या हमें परिश्रम से ही प्राप्त हो सकती है। धनी भी धन से विद्या प्राप्त नहीं कर सकता। अपने कठिन परिश्रम से ही प्राप्त होने के कारण विद्या को तप कहा जाता है। सात्विक और संयमपूर्ण जीवन का अभ्यास, गुरुजनों की प्रेरणा से प्राप्त रुचि और उत्साह, संतुलित विद्या की प्रणाली से प्राप्त गति आदि के द्वारा इस तप को भी आनन्दमय वनाया जा सकता है। व्यावहारिक जीवन में सुख का दृष्टिकोण वना लेने पर विद्या की साधना में श्रम करना कठिन हो जाता है। अतः छात्रों को परिश्रम का अभ्यास करना चाहिए। तभी विद्या की कठिन साधना उनके जीवन में संगत हो सकती है।

८८–दीर्घसाधना से फल होता है

उत्तम विद्या के जितने भी साधन वताए गए हैं, उन सव के सम्वन्ध में एक वात ध्यान में रखने योग्य है। वह यह है कि किसी भी कार्य का फल तत्काल नहीं होता है। फल उत्पन्न होने में समय लगता है। वह देर से होता है। मन, वुद्धि, ज्ञान, चरित्र आदि आन्तरिक जीवन से सम्वन्ध रखने वाले क्षेत्रों में फल स्थूल नहीं, सूक्ष्म होता है, अतः देर से तो होता ही है, उस फल का ज्ञात होना भी कठिन हो जाता है। स्वास्थ्य वढ़ता है, तो चाहे धीरे धीरे वढ़े किन्तु वढ़ने पर अपने को और दूसरों को स्पष्ट दिखाई देता है। क्योंकि वह एक स्थूल वस्तु है। किन्तु वुद्धि, ज्ञान, चरित्र आदि में जव विकास होता है, तो वह अपने को अथवा दूसरों को इतनी सरलता से मालूम नहीं होता, जितनी सरलता से स्थूल फल दिखाई देता है।

विद्या और चरित्र सम्वन्धी फल साधना के द्वारा और समय से

होता है। अतः उस फल को प्राप्त करने के लिये धैर्य की आवश्यकता है। धैर्य साधना में भी अपेक्षित है। साधना का अर्थ रुचि और उत्साह के साथ कार्य की लगन है। विद्या और चरित्र की उन्नति के जो साधन वताए गए हैं, उनका अधिक काल तक निरन्तर अनुशीलन करने पर ही कुछ फल होता है। यह फल देर से ही स्पष्ट दिखाई देता है। प्रकृति के क्षेत्र में भी वृक्षों पर फल देर से ही लगते हैं। फूलों के वृक्ष वर्षों में बढ़ते और फल देने योग्य होते हैं। गुरु के सम्पर्क, स्वाध्याय, सहाध्याय, अध्यापन, अभ्यास आदि विद्या के साधनों का फल निरन्तर साधना के वाद समय से होता है। अतः धैर्यपूर्वक विद्या की साधना करनी चाहिए।

८९–चित्त को एकाग्र कैसे करें

विद्या की साधना के लिए चित्त की एकाग्रता की वहुत आवश्यकता है। चित्त के एकाग्र होने पर ही पढ़ाई में ध्यान लगता है और एकाग्र चित्त से ध्यानपूर्वक की जाने वाली पढ़ाई ही सार्थक होती है। जब मन इधर उधर भटकता रहता है, तो पढ़ाई में नहीं लगना। ऊपरी मन से पढ़ते भी हैं तो न समझ में आता है और न याद होता है। अतः प्रायः छात्र पूछते हैं कि चित्त को एकाग्र कैसे करें ?

चित्त स्वभाव से ही चंचल है। अतः वह अनेक विषयों में भटकता रहता है। चित्त रागात्मक है। सुखकारक विषयों में उनका अनुराग रहता है। वह उन विषयों को चाहता है। वह उन विषयों की कल्पना करता रहता है। यह कल्पना ही चित्त को चंचल वनाती है। हमारा चित्त प्रायः इन कल्पनाओं में रमण करता है। प्रिय विषयों की कल्पना भी सुखकारक होती है। यदि आप विद्या को

प्रिय और सुखकारक विषय बनालें, तो विद्या में भी आपका चित्त लग सकता है। विद्या में स्वाभाविक रुचि नहीं होती। बचपन से माता-पिता की प्रेमपूर्ण प्रेरणा से छात्रों में विद्या से प्रति रुचि उत्पन्न होती है। बड़े होकर वे जीवन में विद्या के महत्व को समझें तो स्वयं रुचि उत्पन्न कर सकते हैं। आरम्भिक पढ़ाई में भाषा, बुद्धि, विचार आदि दुर्बलता रह जाने के कारण विद्या भार बन जाती है। कठिनाई के कारण छात्रों की विद्या में रुचि नहीं रहती। बिना रुचि के अध्ययन में चित्त एकाग्र नहीं हो सकता। गुरु के सम्पर्क की प्रेरणा, सहाध्याय के आनन्द आदि से विद्या में रुचि बढ़ती है। अन्य अनेक सुखकारक प्रलोभन और आकर्षण भी चित्त की एकाग्रता भंग करते हैं। कुछ त्याग और तप का भाव रखने से ही इन प्रलोभनों में चित्त को स्थिर रखा जा सकता है। इसीलिए शास्त्रों में विद्या को तप माना है। संयम और संकल्प द्वारा चित्त को स्थिर रख सकते हैं।

६०—परीक्षा को खेल बनाइये

यद्यपि शिक्षा का लक्ष्य परीक्षा नहीं है, फिर भी आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य परीक्षा ही बन गई है। ऐसा प्रतीत होता है मानों परीक्षा ही शिक्षा का सर्वस्व है। शिक्षा प्रणाली परीक्षा के महत्व को मानती है। परीक्षा फल के अनुसार ही छात्रों की योग्यता मानी जाती है। अतः चाहे व्यक्तित्व के विकास, चरित्र निर्माण आदि का शिक्षा में कोई स्थान हो, किन्तु परीक्षा के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अन्य लक्ष्य महत्वपूर्ण होते हुऐ भी परीक्षा के सामने गौण रहते हैं क्योंकि शिक्षा प्रणाली में अन्य लक्ष्यों के आधार पर छात्र की योग्यता एवं श्रेष्ठता अंकित नहीं की जाती। प्रकट रूप में परीक्षा ही शिक्षा का प्रमुख और अन्तिम लक्ष्य है।

इसलिये परीक्षा भूत छात्रों के सिर पर चढ़ा रहता है। भारतवर्ष में परीक्षा प्रणाली भी असाधारण है। एक वर्ष, दो वर्ष, तीन वर्ष के अन्त में एक परीक्षा होती है। वर्षोंकी पढ़ाई का मूल्य-परीक्षण घण्टों में होता है। इस असाधारण प्रणाली ने परीक्षा के भूत को और भी भयंकर बना दिया है। उल्लास और आनन्द के योग्य यौवन इस परीक्षा के भूत के त्रास में ही बीतता है। परीक्षा का भूत छात्रों के जीवन के आनन्द को भस्म कर रहा हैं। आरम्भ की शिक्षा में जो भाषा, बुद्धि आदि सम्बन्धी दुर्वलतायें रह जाती हैं वे इन परीक्षाओं को और भी कठिन बना देती हैं। दिन-रात परिश्रम करके भी छात्रों को आत्मविश्वास उत्पन्न नहीं होता और न परीक्षा में अच्छी सफलता मिलती है। परीक्षा के इस भूत से मुक्ति पाने का मन्त्र यह है कि परीक्षा को खेल बनाइये। गुरु के सम्पर्क की प्रेरणा और संतुलित विद्या के अभ्यास के द्वारा बुद्धि का विकास करके तथा भाषा और अभिव्यक्ति को सशक्त बनाकर आप परीक्षा के भय से मुक्त हो सकते हैं। अल्प परिश्रम से भी आपको उत्तम श्रेणी सहज ही प्राप्त हो सकती है।

९१–परीक्षा से आगे

यद्यपि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परीक्षा ही शिक्षा का सर्वस्व बन गई है, फिर भी वस्तुत: परीक्षा को शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य मानना उचित नहीं है। शिक्षा जीवन की एक व्यापक साधना है, जिसमें स्वास्थ्य, विद्या, चरित्र आदि का विकास समन्वित है। ज्ञान का उपार्जन और विद्या-ध्ययन भी शिक्षा का केवल एक अंश है। परीक्षा तो विद्या का केवल एक पक्ष है। परीक्षा में ज्ञान और योग्यता की परख की जाती है। वह परख भी वर्तमान परीक्षा प्रणाली में पूरी तरह सही नहीं होती। परीक्षा-फल छात्र की तैयारी और योग्यता के अतिरिक्त अन्य कई बातों पर

निर्भर होता है। उनमें से कुछ बातें तो बिलकुल समय और संयोग पर निर्भर हैं फिर भी जहाँ तक सम्भव हो परीक्षा में अच्छी श्रेणी प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि परीक्षा की श्रेणी नौकरियों में चुनाव के समय देखी जाती है।

किन्तु परीक्षा को ही शिक्षा का अन्तिम लक्ष्य मान लेना उचित नहीं है। केवल परीक्षा का प्रमाण-पत्र नौकरियों के चुनाव में भी आपकी सहायता नहीं कर सकता। वह इन चुनावों की प्रतियोगिताओं का प्रवेश-पत्र मात्र है। अच्छी श्रेणी इन चुनावों में आपको शामिल होने का अवसर देती है, जबकि नीची श्रेणी वालों को प्रायः इनमें शामिल होने का निमन्त्रण भी नहीं मिलता। किन्तु इन चुनावों में प्रायः एक दूसरी परीक्षा होती है जो लिखित नहीं वरन् मौखिक होती है। रटी हुई बातें कागज पर लिखी जा सकती हैं। किन्तु वे मौखिक परीक्षा में काम नहीं आती। जिन बातों को आप अच्छी तरह नहीं समझते उन बातों को आप उनको नहीं समझा सकते जो सामने बैठकर आपकी मौखिक परीक्षा लेते हैं। बिना समझे लिखा जा सकता है किन्तु बोला नहीं जा सकता। संस्कृत में एक कहावत है कि मूर्ख और बुद्धिमान की परीक्षा बोलते ही हो जाती है। मौखिक परीक्षा में आपके व्यक्तित्व के अनेक गुणों की परख होती है, जिनमें बुद्धि, सजगता, तर्क, आत्म-विश्वास, ग्रहणशीलता, गहराई, दूसरे को समझाने और प्रभावित करने की शक्ति, बोलने का ढंग, उच्चारण आदि मुख्य हैं। चुनाव के बाद नौकरी के कार्य और जीवन में भी यह गुण सदा काम आते हैं और सफलता में सहायक होते हैं। अतः परीक्षा में अच्छी श्रेणी के साथ साथ इन गुणों को भी अपना लक्ष्य बनाइये। परीक्षा को ही विद्या की आखिरी मंजिल मानकर आपको जीवन के संघर्षों में कठिनाई होगी।

६२–प्रथम श्रेणी से आगे

प्रथम श्रेणी को शिक्षा का एक दुर्लभ लक्ष्य समझा जाता है। जो छात्र प्रथम श्रेणी में परीक्षा पास करते हैं उन्हें सभी विशेष रूप से योग्य मानते हैं। विद्यालय और समाज दोनों में उन्हें आदर मिलता है। नौकरियों के चुनावों में भी उन्हें सबसे पहले स्थान दिया जाता है। यह सब उचित ही है, क्योंकि उनका परीक्षा में प्रथम श्रेणी लाना दूसरों से अधिक योग्यता और क्षमता का प्रमाण है। प्रथम श्रेणी की योग्यता कितनी दुर्लभ है और प्रथम श्रेणी लाना कितना कठिन है, यह इसी से प्रकट है कि सभी परीक्षाओं में बहुत कम छात्र प्रथम श्रेणी में पास होते हैं। प्रथम श्रेणी तो बहुत दुर्लभ है, द्वितीय श्रेणी भी आज कठिन हो गई है। प्रथम श्रेणी की दुर्लभता और द्वितीय श्रेणी की कठिनाई का अनुमान आप अपनी श्रेणी के आधार पर लगाइये।

किन्तु दुर्लभ और श्रेष्ठ होते हुए भी प्रथम श्रेणी शिक्षा और योग्यता की चरम सीमा नहीं है। प्रथम श्रेणी का महत्व नीची श्रेणियों की तुलना में ही अधिक है। अपने आपमें उसका इतना महत्व नहीं है जितना कि समझा जाता है। साठ प्रतिशत अङ्क आने पर ही तो प्रथम श्रेणी आती है। ये अङ्क पूर्णांकों के आधे से कुछ ही अधिक हैं। फिर आजकल की परीक्षाओं में जिन योग्य छात्रों को अच्छे अङ्क मिलते हैं वे उन अयोग्य छात्रों की तुलना में मिलते हैं जो नीची श्रेणी में पास किये जाते हैं। उनसे कुछ अधिक योग्यता होने पर ही अच्छे अङ्क मिल जाते हैं। यदि आप परीक्षा की श्रेणियों का वास्तविक मूल्य जानना चाहते हैं तो आप जिस परीक्षा में बैठ रहे हैं उस परीक्षा के प्रश्नों के बारे में उन छात्रों से कुछ पूछकर कर लीजिए जो उस परीक्षा को पास कर चुके हैं। प्रथम श्रेणी में पास होने वाले छात्रों

से भी आपको निराशा होगी। कुछ योग्यता और क्षमता पर निर्भर होने पर भी प्रथम श्रेणी शिक्षा का इतना श्रेष्ठ लक्ष्य नहीं है जितना कि शिक्षा की वर्तमान दुर्दशा में प्रतीत होता है। प्रथम श्रेणी से आगे विद्या की जो गहराइयाँ और ऊँचाइयाँ शेष रह जाती हैं उनका अनुमान श्रेष्ठ लेखकों के ग्रन्थों की भाषा, शैली, गम्भीरता आदि से लगाइये। हजारों प्रथम श्रेणी प्राप्त करने वालों में कोई विरला ही योग्यता की उन सीमाओं को पहुँच पाता है। एक शताब्दी में लाखों छात्र प्रथम श्रेणी में पास होते हैं किन्तु योग्य लेखक युगों में गिने चुने दिखाई देते हैं।

६३–शिक्षा का गिरता हुआ स्तर

आजकल चारों ओर शिक्षा के गिरते हुए स्तर की चर्चा बहुत सुनाई देती है। शिक्षा के स्तर का सम्बन्ध छात्रों की योग्यता से है। शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है, इसका आशय है कि छात्रों की योग्यता गिर रही है। अभिप्राय यह है कि पहले जिस कक्षा के छात्रों की जो योग्यता होती थी, आज उस कक्षा के छात्रों की योग्यता उतनी नहीं है वरन् उससे कहीं कम है। कहा तो यहाँ तक जाता है कि पहले के हाईस्कूल पास आज के बी० ए० पास से अच्छी योग्यता रखते हैं। इसके प्रमाण में आजकल के छात्रों की भाषा की गलतियों तथा लिखने और समझने की असमर्थता की ओर संकेत किया जाता है। यह सत्य है कि आज के छात्रों में शुद्ध एवं अच्छी भाषा लिखने तथा पाठ्यपुस्तकों को समझने की योग्यता कम है।

किन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि आज के छात्र पहले के छात्रों से किसी प्रकार हीन हैं। आज के छात्र बुद्धि में किसी प्रकार भी पहले

के छात्रों से कम नहीं हैं। शिक्षा प्रणाली में भाषा और लेखन का अभ्यास नहीं कराया जाता। इसलिये भाषा की दुर्वलता छात्रों में शुरू से बढ़ रही है। पहले के छात्र आज के छात्रों की अपेक्षा कुछ अधिक सही भाषा लिखते थे। फिर भी अच्छी भाषा के लिखने में ऐसे ही असमर्थ थे, जैसे की आज के छात्र हैं। वे भी रटकर याद करते और बिना विषयों को समझे परीक्षा पास करते थे। कक्षा में अच्छे चलने वाले और अच्छी श्रेणी में पास होने वाले उनमें भी विरले ही होते थे, जैसे कि आज हैं। अधिकांश छात्र दुर्वल ही होते थे। यह कक्षा की शिक्षा प्रणाली के दोष हैं, छात्रों का दोष नहीं। यह शिक्षा प्रणाली गुरु के सम्पर्क की प्रेरणा न होने के कारण निष्प्राण है। यही प्रणाली आज भी चल रही है। शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन होने पर आज के छात्र अंग्रेजी शासन काल की शिक्षा के छात्रों से अधिक योग्य बन सकेंगे।

९४–अन्धों में काने सरदार

आजकल शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है, यह बात गलत है। सही बात यह है कि अँग्रेजी शासन काल से जो शिक्षा प्रणाली चल रही है और जो अब भी चल रही है उसमें अधिकांश छात्र दुर्वल ही रहते हैं। इन दुर्वल छात्रों की संख्या पहले भी अधिक थी। कुछ अन्य कारणों से कुछ थोड़े से छात्र ही पहले भी योग्य होते थे। उनमें एक यह कारण था कि पहिले माता-पिता व्यक्तिगत रूप से छात्रों की शिक्षा में रुचि लेते थे और उनकी सहायता करते थे। आज माता-पिता स्वयं अपनी सन्तान की शिक्षा में योग नहीं देते। आज भी जो कुछ छात्र योग्य दिखलाई देते हैं उनके पीछे भी खोज करने पर विद्यालय की शिक्षा के अतिरिक्त किसी व्यक्तिगत सम्पर्क और सहायता का योग मिलेगा। ऐसे थोड़े से

छात्र अन्य अयोग्य छात्रों के बीच पहले भी अन्धों में काने सरदार बन जाते थे और आज भी यही दशा है। वस्तुतः योग्य छात्र पहले भी कम होते थे और आज भी कम हैं।

यह अन्धों की सरदारी शिक्षा का एक बड़ा भारी भ्रम है। इस भ्रम में रहने वाले छात्र आगे चल कर जीवन में कोई स्थान नहीं बना पाते। जीवन में स्थान योग्यता से बनता है योग्यता सापेक्ष अवश्य है, उसका अनुमान तुलना से ही लगता है। किन्तु अयोग्य और असमर्थ लोगों से अपनी तुलना करके, उनके बीच श्रेष्ठ बनकर प्रसन्न होना भ्रम है। जब जीवन में योग्यजनों के साथ तुलना होती है तो यह भ्रम भंग हो जाता है। अतः योग्यजनों के साथ ही अपनी तुलना कीजिए। अपनी भाषा की सुन्दरता, शुद्धता और शक्ति का तथा अपनी बुद्धि की कुशलता, अपने विचार की गम्भीरता आदि का अनुमान अपने अध्यापकों के साथ तथा श्रेष्ठ लेखकों एवं विद्वानों के साथ अपनी तुलना करके लगाइये। पहलवान बनने वाले युवक दुर्बलों को पछाड़ कर वीरता का गर्व नहीं करते बल्कि उस्तादों के साथ 'जोर करके' पहलवान बनते हैं। शक्ति और विद्या के क्षेत्र में समर्थों से तुलना करना ही मिथ्या भ्रम से बचाकर उन्नति की सच्ची प्रेरणा देता है।

९५–डूबतों के साथ

आज के छात्रों का स्तर पहले के छात्रों से कुछ विशेष रूप से नीचा नहीं है। ऐसा ही स्तर अंग्रेजी काल से आरम्भ होने वाली शिक्षा प्रणाली में आदि से अन्त तक चला आ रहा है। सन्तान की शिक्षा में माता-पिता का योग कम होने के कारण, तथा आज के छात्र की आर्थिक कठिनाइयाँ, राजनीतिक बाधाएँ, सांस्कृतिक छलनाएं अधिक बढ़ जाने के कारण आजकल परीक्षाफल अवश्य बहुत गिर रहा है। पास होने वालों

का प्रतिशत भी बहुत कम है। पास होने वालों में अधिकांश तृतीय श्रेणी में पास होते हैं, जो कोई गौरव की बात नहीं। द्वितीय श्रेणी भी आज प्रथम श्रेणी के समान दुर्लभ हो गई है। फेल होने वालों की संख्या इतनी अधिक हो गई है कि आज पास होना एक नियामत बन गया है। द्वितीय श्रेणी गौरव की और चमत्कार की बात समझी जाती है। छात्रों का आत्म विश्वास बहुत कम हो गया है। जिस प्रकार पहले पास होने की आशा अधिक की जाती थी, और फेल होने पर आश्चर्य एवं खेद होता था, उसी प्रकार आज फेल होने की सम्भावना अधिक मानी जाती है तथा पास होने पर आश्चर्य होता है।

शिक्षा की इस दुर्दशा की बाढ़ में सभी डूब रहे हैं। डूबने वालों की संख्या इतनी अधिक है कि डूबना ही साधारण समझा जाता है। अतः डूबने का खेद भी बहुत कम है। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार महामारी में मरने का खेद कम होता है, क्योंकि सभी मरते हैं। पहले फेल होना एक दुर्घटना समझी जाती थी किन्तु अब वह एक साधारण बात समझी जाती है। तृतीय श्रेणी में पास होना डूबना ही है, किन्तु वह वरदान समझा जाता है। फेल होना साधारण बात हो जाने के कारण छात्रों को ही नहीं, उनके माता-पिता को भी खेद नहीं होता। ये जीवन में निराशा, निरुत्साह, उदासीनता, निष्फलता के लक्षण हैं, जो देश के भविष्य के लिये घातक सन्देहों से भरे हैं। सभी डूब रहे हैं, इस कारण डूबने का सन्तोष करना हीनता का सूचक है जो कि तरुण छात्रों को शोभा नहीं देता। शिक्षा और परीक्षा के साधारण रहस्यों को समझ कर वे सरलता से अच्छी सफलता प्राप्त कर सकते हैं। असफलता उनकी अयोग्यता का नहीं वरन् उनकी लापरवाही और गलत शिक्षा-साधना का प्रमाण है।

९६—अनुशासन छात्रों का धर्म है

छात्रों की अनुशासनहीनता वर्तमान शिक्षा की एक जटिल समस्या

वन गयी है। सभी, नेता, मन्त्री और शिक्षा अधिकारी इस समस्या से चिन्तित हैं। इस पर विचार करने और सुलझाने के लिये आये दिन अधिकारियों के सम्मेलन होते हैं। किन्तु अभी तक न तो इस समस्या का ठीक निदान हुआ है और न इसे सुलझाने का कोई व्यावहारिक उपाय ही निकला है। विद्यालयों के अनुशासन में न तो कोई सुधार हुआ है और न सुधार की कोई दिशा वन रही है। इस अनुशासन-हीनता के क्या कारण हैं, इस सम्वन्ध में लोगों में मतभेद है। कोई अध्यापकों को दोषी ठहराता है, तो कोई राजनीति को इसका कारण वतलाता है, तो कोई माता-पिता और समाज के उत्तरदायित्व का संकेत करता है। एक वात में सव एकमत हैं—कोई भी कानून की दृष्टि से वालिग और जिम्मेदार छात्रों को अपने अनुशासन तथा अपनी अनुशासनहीनता के लिये उत्तरदायी वताने का साहस नहीं करता।

आश्चर्य की वात यह है कि अनुशासन के सम्वन्ध में मनोविज्ञान का सिद्धान्त स्पष्ट है, फिर भी इसके सम्वन्ध में इतना भ्रम और इतना अनिश्चय है। अनुशासन की समस्या से भी पहले इस भ्रम के कारणों पर विचार करना आवश्यक है। इस भ्रम का एक कारण यह है कि अनुशासन-हीनता के अनेंक रूप हैं और उनके अनेक कारण हैं। अतः उन सव रूपों का कोई एक कारण नहीं हो सकता। दूसरा कारण यह है कि अनुशासन मनुष्य का स्वतंत्र धर्म है। इन वातों को भुलाकर छात्रों के अतिरिक्त अन्य सव लोगों को छात्रों की अनुशासन-हीनता के लिये दोषी ठहराया जाता है। ऊपर से लादा हुआ अनुशासन सच्चा अनुशासन नहीं है। भय के कारण अंग्रेजी राज्य में समाज और शिक्षालयों में शान्ति रहती थी, किन्तु, अनुशासन नहीं था। आज वह समय नहीं है। अतः छात्र उच्छृङ्खल हो गये हैं। अनुशासन के सम्वन्ध में दो ही अन्तिम सत्य हैं। एक यह है कि वचपन में माता-पिता की शिक्षा द्वारा अनुशासन वनता है। दूसरा यह है कि वड़े होकर जो छात्र अपने

जीवन निर्माण का ध्यान रखता है उसे कोई भी राजनीति अनुशासन से विचलित नहीं कर सकती। इन दोनों के अभाव में अनुशासन भय के द्वारा बाहर से लादा जा सकता है। प्रायः लोग इसी अनुशासन की बात करते हैं, जिससे देश को अथवा छात्रों को कोई लाभ नहीं। अध्यापकों का कार्य पढ़ाना है अनुशासन रखना नहीं। अनुशासन रखना वयस्क छात्रों का धर्म है, जो अनुशासन नहीं रख सकते, वे विद्यालय में रहने योग्य नहीं हैं।

९७–राजनीति की राह

छात्रों में अनुशासन हीनता का एक मुख्य कारण विद्यालयों में राजनीति का प्रभाव है। अधिकांश छात्र सीधे और पढ़ने में रुचि रखने वाले होते हैं। विद्यालय में अनुशासन बिगाड़ने वाले कुछ इने गिने छात्र होते हैं। ये छात्र पढ़ने में अच्छे नहीं होते, अतः अच्छी श्रेणी में पास होकर जीवन स्थान बनाना इनका लक्ष्य नहीं होता। राजनीति का अंचल पकड़ ऐसे छात्र अपनी लोकप्रियता बढ़ा लेते हैं और वे भावी नेता बनने के स्वांग रचते हैं। पढ़ाई को महत्व न देने के कारण ऐसे छात्रों को स्वांगों के लिये समय भी रहता है। स्थानीय राजनीतिक शक्तियों से इन्हें अवलम्ब और प्रोत्साहन मिलता है। कुछ मनचले रईसजादे भी, जो प्रायः पढ़ने में कमजोर होते हैं, इनके साथ मिल जाते हैं। इस प्रकार लिखना पढ़ना उनके लिये कोई महत्व नहीं रखता। ऐसे इने गिने दुर्बल किन्तु प्रोत्साहित छात्र विद्यालय में स्वयम्भू नेता बन जाते हैं। पढ़ने वाले और योग्य छात्र अधिक संख्या में होने पर भी इन अल्पसंख्यक नताओं से दबे रहते हैं।

विद्यालय में नेता ही चमकते रहते हैं, चाहे परीक्षा और जीवन में उनका कोई स्थान हो। योग्य छात्रों के लिये और पढ़ने वाले छात्रों

के लिये इनका नेतृत्व एक लज्जा की बात है। योग्य और बहुसंख्यक होकर भी वे दबे रहते हैं। यह उनकी दुर्बलता का द्योतक है। यदि राजनीति के प्रपंच पढ़ाई में बाधक हैं इसलिये यदि वे विद्यालय की राजनीति में भाग नहीं लेना चाहते तो यह उनकी बुद्धिमानी है। किन्तु वे अयोग्य नेताओं का समर्थन करते हैं और उनका नेतृत्व स्वीकार करते हैं, यह उनकी दुर्बलता है। यदि वे राजनीति में भाग नहीं लेना चाहते तो उन्हें इन प्रपंचों से पूर्णतः दूर रहना चाहिये। यदि ये पढ़ाई में बाधक हैं तो इनका बहिष्कार करना चाहिये। बहिष्कार करने पर इनका महत्व ही कम हो जायगा और इन स्वयम्भू नेताओं का मिथ्या-गौरव भी समाप्त हो जायगा।

६८—सरस्वती की वीणा

विद्या की देवी सरस्वती हंस पर विराजती हैं। उनके हाथ में वेद और वीणा है। वेद ज्ञान का सूचक है और वीणा कला की प्रतीक है। सरस्वती का रूप यह संकेत करता है कि विद्या का पूर्ण रूप ज्ञान और कला का समन्वय है। कला संस्कृति का अङ्ग है। कला और संस्कृति का विद्या में बहुत कम स्थान है। संस्कृति का इतिहास पढ़ाया जाता है, जो एक प्रकार का ज्ञान ही है। कलाओं के विद्यालय बहुत कम हैं। साधारण शिक्षालयों में कलाएँ बहुत कम सिखलाई जाती हैं। प्रज्ञान-विभाग को ही 'कला-विभाग' कहा जाता है। कला के बिना विद्या पूर्ण नहीं होती। साहित्य, संगीत और कला से रहित मनुष्य पशु के समान है।

कला एक साधना है। कला का आडम्बर सरल है, किन्तु कला की साधना कठिन है। कला से प्रेम दिखाने वालों में कितने कला का ज्ञान रखते हैं और कितने कला की साधना करते हैं। सांस्कृतिक कार्यक्रमों

के नाम पर विद्यालयों में तथा अन्यत्र होने वाले कला-प्रदर्शनों में उपस्थित होने वाले दर्शकों में कितने कला के विषय में थोड़ा भी समझते हैं ? उनमें कितने कला सीखने का प्रयत्न करते हैं ? सत्य यह है कि जिसे कला का प्रेम कहा जाता है वह कला के प्रति कौतूहल मात्र है। यह कला का उपहास है जिसे प्रदर्शन के भूखे कलाकार नहीं समझते। यदि आप कला के विषय में कुछ भी नहीं जानते तो इन प्रदर्शनों में उपस्थित होना एक मनोरंजन मात्र है। मनोरंजन का भी जीवन में स्थान है, किन्तु सांस्कृतिक कार्यक्रमों के नाम पर होने वाले प्रदर्शनों में अपना अधिक समय नष्ट न कीजिये।

६६—फ़ैशन के दीवाने

आज के जमाने में फ़ैशन का भूत बहुत चढ़ रहा है। स्त्रियाँ ही नहीं पुरुष भी इसके शिकार होते जा रहे हैं। स्त्रियों के लिये फ़ैशन किसी हद तक अलंकार कहा जा सकता है। किन्तु पुरुषों में फ़ैशन का बढ़ना पौरुष के ह्रास का लक्षण है। फ़ैशन का सम्बन्ध सौन्दर्य से है। सुन्दरता सभी के लिये अभीष्ट है, किन्तु पुरुषों के लिये ऐसी सुन्दरता का मोह उचित नहीं, जो उनके पौरुष को हीन बनाये। कालिदास का कहना है कि यौवन शरीर का प्राकृतिक मंडन है। यौवन के विकास में स्वास्थ्य और शक्ति का योग होने पर अन्य किसी सौन्दर्य-प्रसाधन की अपेक्षा नहीं है। सुडौल और बलिष्ठ अंग बिना अलंकार के ही सुन्दर लगते हैं। किन्तु स्वास्थ्य और शक्ति की क्षीणता के कारण युवकों के शरीर दुर्बल हो रहे हैं। रंगीन वस्त्रों की सजावट और फ़ैशन की कोमलता में वे अपनी इस दुर्बलता को छिपाना चाहते हैं।

यह युवकों की भूल है। पढ़ने वाले छात्र भी इस भूल के शिकार हैं। नई नई फ़ैशन के रंगीन कपड़े इसके प्रमाण हैं। पशुओं और

पक्षियों को प्रकृति ने रंगीन वालों का प्राकृतिक वस्त्र दिया है। मनुष्य के लिये वह शोभ नहीं है, इसलिये प्रकृति ने उसे छीन लिया है। रंगीन वस्त्र पहनने वाले युवक किन्नर से प्रतीत होते हैं। कोमलता से मिलकर उनका शृङ्गार उनकी दुर्वलता को दूना प्रकट करता है। साहित्य में सर्वत्र वल, तेज और पौरुप को युवकों का गुण वतलाया है। सिंह के वक्ष, वृप के स्कन्ध, गज की चाल, मेघ के स्वर आदि से उनकी उपमाएँ दी गई हैं। आज वक्ष और स्कन्ध दुर्वलता से दव गये हैं। चाल हंसों को लज्जित करती है। स्वर में ओज नहीं है। फ़ैशन के दीवाने युवक कोमलता को गौरव समझ रहे हैं यह वड़ी भूल है। शक्ति, ओज, दृढ़ता आदि पुरुपोन्वित गुणों से ही जीवन और विद्या में सफलता मिलेगी। प्रेम के पतंगों को यह वात समझने की जरूरत है कि युवतियाँ समर्थ और वलवान पुरुप को प्रेम करती हैं। कोमल और क्षीण युवकों से वे घृणा करती हैं। अत: फ़ैशन के दीवाने न वनिए; शृङ्गार के स्थान पर पुरुपोचित गुणों को अपनाइये।

१००—सहशिक्षा की छलनाएँ

सहशिक्षा आधुनिक शिक्षा का एक अपूर्व सौभाग्य है। प्राचीन काल में शिक्षा एक तपस्या थी जिसकी साधना गुरु और शिष्य वन के आश्रमों में करते थे। आज गुरु और शिष्य के लिये शिक्षा एक स्वर्गीय सौभाग्य है। विद्यालयों में लड़कियों की उपस्थिति से वह तपस्या एक मधुर मनोरंजन वन गई है। अध्यापक और छात्र दोनों ही स्त्री जाति की मधुर और सुन्दर उपस्थिति से अपने कार्य में कुछ सरसता का अनुभव करते हैं। स्त्रियों के समानाधिकार, मनोविज्ञान आदि के आधार पर सहशिक्षा का समर्थन किया जाता है। यह आधार जीवन के विपय में सत्य है किन्तु शिक्षा के विपय में उतना सत्य नहीं है।

शिक्षा एक साधना है। वह एक तपस्या प्राकृतिक सरसता का मोह रखकर बहुत सफलता पूर्वक सम्पन्न नहीं की जा सकती। ज्ञान की साधना में चित्त लगाने के लिये उनको कुछ सहज और सुखद आकर्षणों से हटाना होगा। स्त्री भी इन्हीं आकर्षणों में से एक है। इसीलिये प्राचीन शिक्षा में ब्रह्मचर्य पर इतना बल दिया जाता था। इसका आशय यह नहीं है कि आप स्त्रियों से घृणा करें। मोह के समान घृणा भी हमारी साधना में बाधक है। घृणा वस्तुतः मोह की ही एक असफल अभिव्यक्ति है। अतः छात्रों को सभी सम्बन्ध में एक सन्तुलित दृष्टिकोण रखना चाहिये, जिसमें न मोह की दुर्बलता हो और न घृणा का कलुष हो। संस्कृति, कला और सामाजिक कार्यक्रम के नाम पर अपने को धोखा न दीजिए। गृहस्थ जीवन में स्त्री मनुष्य की संगिनी है; किन्तु छात्र जीवन में उसे अपनी साधना की बाधा न बनाइये।

१०१—भाषण और सभाएँ

विद्यालय के समारोहों और छात्र संघ के अधिवेशनों के प्रसंग में आजकल सभाएँ बहुत होती हैं। इन सभाओं में भाषण होते हैं। इन भाषणों का शिक्षा में बहुत महत्व माना जाता है। भाषण देने के लिये दूर दूर से लोग बुलाये जाते हैं। प्रायः छात्र इन भाषणों को बड़े ध्यान से सुनते हैं। वे इन्हें समझने और इनसे लाभ उठाने का प्रयत्न करते हैं। किन्तु वस्तुतः इन भाषणों से बहुत कम लाभ होता है। इसमें छात्रों का दोष नहीं है। जिस तेजी से भाषण दिये जाते हैं उस तेजी से मस्तिष्क उनके अर्थ को ग्रहण नहीं कर सकता। भाषणों की प्रशंसा बहुत लोग करते हैं किन्तु वे प्रशंसा करने वाले किसी भाषण का सार संक्षेप में नहीं बता सकते। कोई भी नहीं बता सकता,

क्योंकि कोई भी इतनी वेगपूर्ण वाणी के अर्थ को साथ साथ ग्रहण नहीं कर सकता ।

भाषण की प्रथा आधुनिक सभ्यता और राजनीति का एक अंग बन गई है। शिक्षा प्रणाली में भी यह चल रही है । किन्तु इन भाषणों से वक्ताओं की महिमा और प्रतिभा का विज्ञापन होता है, श्रोताओं को अधिक लाभ नहीं होता। अधिकांश भाषणों में कोई विशेष ज्ञान की बातें नहीं होती। उनमें केवल बड़े आदमियों के बोलने के अधिकार का समर्थन होता है। भाषणों में प्राय: ऐसी आदर्शवादी बातें कही जाती हैं जिनका जीवन में चरितार्थ होना कठिन है। भाषणों और सभाओं में समय नष्ट करने से व्यावहारिक रूप में कुछ करना अधिक सार्थक है । किन्तु यह बोलने का युग है, करने का नहीं। कम से कम भारत में तो ऐसा ही है। भाषण में सुनने वाला निष्क्रिय और उदासीन भाव से सुनता है। इसके स्थान पर यदि दो आदमी परस्पर बैठ कर शान्ति से विचार विनिमय करें तो अधिक लाभ है। प्राचीन भारत में अध्यापन की भी यही प्रणाली थी। सभा की भीड़ में मिलना भी निरर्थक होता है। सम्बन्ध एवं प्रेम के लिये शान्तिपूर्वक और व्यक्तिगत भाव से मिलने की जरूरत है। ऐसे मिलन में ही उस स्थायी प्रेम का उदय होता है जो जीवन का सार और संस्कृति का सूत्र है।

१०२—समय का रहस्य

जीवन सामान्य रूप से समय की एक अवधि और निरन्तर गति है। एक अवधि में मनुष्य का अस्तित्व रहता है। और इस अवधि में समय का रथ निरन्तर आगे बढ़ता रहता है। समय की इस प्राकृतिक गति को हम वय के विकास में स्पष्ट देखते हैं। जन्म से

लेकर यौवन तक बालक बढ़ता है। प्रकृति के क्षेत्र में समय की यह गति स्वाभाविक है। प्रकृति की शक्ति से वह अपने आप चलती है। पेड़ भी अपने आप बढ़ते हैं। विकास के क्रम से समय की गति सार्थक होती है। किन्तु चेतना समय को जानने वाली अतएव समय से ऊपर है। अतः चेतना का विकास शरीर की भाँति प्राकृतिक क्रिया से अपने आप नहीं होता। चेतना स्वतन्त्र है। अतः विद्या, चरित्र और संस्कृति का विकास मनुष्य के स्वतन्त्र उद्योग से ही होता है। सत्य यह कि उद्योग के द्वारा भी यह विकास कठिन है।

जीवन में सभी प्रकार के विकास का एक रहस्य यह है कि इस विकास का समय से बड़ा सूक्ष्म सम्बन्ध है। इतना ही नहीं है कि विकास के चरण समय की गति के साथ चलते हैं वरन् एक समय में होने योग्य कार्य दूसरे समय में होना अत्यन्त कठिन होता है। आरम्भ में जो बालक शरीर अथवा बुद्धि में कमजोर रह जाते हैं उसको बाद में यत्न करने पर भी मजबूत बनाना दुष्कर होता है। समय के प्रत्येक पूर्व क्षण का मूल्य उत्तर क्षण से अधिक है। पूर्व काल में जो कार्य सरलता से किया जा सकता है वह उत्तरकाल में अधिक समय और प्रयत्न से भी कठिन होता है। अतः जो समय आपके सामने वर्तमान है उसके प्रत्येक क्षण का मूल्य पहिचानिये। भविष्य की उन्नति पूर्व-साधना पर निर्भर है। इस वर्तमान के समय में जो कार्य सबसे अच्छा हो सकता है तथा जिस कार्य का करना भविष्य में कठिन होगा उसे करने में ही वर्तमान समय को लगाइये। जो कार्य अभी न करने से कोई हानि नहीं है, और जिन्हें हम भविष्य में भी कर सकते हैं उन कामों में वर्तमान के मूल्यवान समय को नष्ट करना जीवन को हानि पहुँचाना है। छात्र-जीवन का समय मुख्यतः विद्याध्ययन के लिये ही है। इस समय विद्या में जो कमी रहेगी वह कमी पूरी न हो सकेगी और इस कमी के कारण जीवन में जो घाटे होंगे वे भी पूरे न होंगे। अतः जो काम विद्याध्ययन

के लिये आवश्यक नहीं है और जिन्हें आप भविष्य में भी कर सकते हैं उन्हें छोड़कर विद्या की साधना में इस अमूल्य समय का उपयोग कीजिये। वीता हुआ समय लौटकर नहीं आता। इसीलिए वह अनमोल है। कैशोर और यौवन जीवन का सबसे सुन्दर काल है। यह लम्बा समय विध्याध्ययन में व्यतीत होता है। इसके प्रत्येक क्षण का उपयोग जीवन को सम्पन्न, सफल और सार्थक वनाने में कीजिए।

१०३—भाग्य और भगवान

विद्या की साधना मनुष्य के स्वतन्त्र उद्योग के द्वारा होती है। किन्तु यह साधना बड़ी कठिन है। कठिन कार्यों में प्रायः मनुष्य भाग्य और भगवान का सहारा लेता है। सफलता के लिये वह भगवान से प्रार्थना करता है, देवी-देवताओं की पूजा करता है। असफल होने पर वह अपनी असफलता को भाग्य का दोष मान कर सन्तोष कर लेता है। भाग्य और भगवान का सहारा मनुष्य अपनी दुर्वलता और असमर्थता के कारण खोजता है। यह दुर्वलता छात्रों में भी होती है। अतः छात्र भी इनका सहारा लेते हैं। परीक्षा में पास होने के लिये वे भी भगवान से प्रार्थना करते हैं, देवी-देवताओं को मनाते हैं। असफल होने पर वे भी अपने भाग्य को दोष देते हैं।

भगवान है या नहीं, यह कोई नहीं जानता; जो जानता है वह वोलता नहीं, वहस नहीं करता। अज्ञानी ही वहस करते हैं। भाग्य के सम्वन्ध में भी कुछ नहीं कहा जा सकता है। हाथ पर हाथ रख कर मनुष्य वैठा रहे और कोई काम हो जाये तो यह मानना होगा कि भाग्य है। यदि ऐसा नहीं होता तो फिर भाग्य से नहीं, उद्योग से ही कार्य होता है। जीवन की परिस्थितियाँ जटिल हैं। वहुत सी ऐसी वातें हैं जो संयोग से होती अथवा हमारे अधिकार में नहीं होती। इन्हीं के प्रभाव

को हम भाग्य की संज्ञा देते हैं। भगवान यदि हैं तो वे सभी पर कृपा करते हैं। भगवान में विश्वास करने का अर्थ यही है कि हमें यह विश्वास रखना चाहिये कि हमारे उद्योग के पीछे कोई शक्ति है। यह शक्ति न्यायपूर्ण है, अतः उद्योग से उचित सफलता मिलेगी। जो परिस्थितियां हमारे हाथ में नहीं हैं उन्हें हम 'भाग्य' कह सकते हैं। किन्तु अन्ततः जीवन में सफलता का साधन उद्योग ही है। अतः उन्नति की कामना करने वाले युवकों को भाग्य और भगवान में विश्वास रखते हुए भी निरन्तर उद्योग करना चाहिए।

१०४–श्रेष्ठ विद्या के चतुरंग

विद्योपार्जन में छात्रों के जीवन का एक लम्बा और वहुमूल्य समय व्यतीत होता है। विद्याध्ययन में बीतने वाला वाल्य, किशोर और यौवन का समय जीवन का सबसे सुन्दर और स्वर्णिम समय है। यही जीवन के निर्माण और विकास का युग भी है। अतः इस सुन्दर और अमूल्य समय का सदुपयोग जीवन के निर्माण और श्रेष्ठ विद्या के उपार्जन में करना चाहिये। इतने मूल्यवान और लम्बे समय को विद्याध्ययन में व्यतीत करते हुए साधारण विद्या से सन्तोष करना उसी प्रकार उचित नहीं है जिस प्रकार कि अधिक मूल्य देकर घटिया वस्तु खरीदना उचित नहीं है अतः नीची श्रेणियों में पास होने मात्र से किसी भी छात्र को सन्तुष्ट न रहना चाहिये। प्रत्येक छात्र को अपने अमूल्य जीवन का आदर कर श्रेष्ठ विद्या प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिये। प्रयत्न करने पर कुछ भी कठिन नहीं है। श्रेष्ठ विद्या का स्वरूप और मार्ग समझने पर उद्योग और अध्यवसाय के द्वारा प्रत्येक छात्र उसे प्राप्त कर सकता है। उतने ही समय में श्रेष्ठ विद्या प्राप्त करना उसी प्रकार उत्तम है जिस प्रकार उतने ही मूल्य में वढ़िया चीज़ खरीदना बुद्धिमानी है।

श्रेष्ठ विद्या का एक प्रसिद्ध और परिचित रूप प्रथम श्रेणी है। प्रथम श्रेणी अत्यन्त दुर्लभ मानी जाती है। निःसन्देह वह कठिन है किन्तु प्रयत्न करने पर प्रत्येक छात्र प्राप्त कर सकता है। प्रथम श्रेणी और अच्छी योग्यता श्रेष्ठ विद्या के सामान्य मानदंड हैं। किन्तु प्रथम श्रेणी उत्तम विद्या की चरम सीमा नहीं है। श्रेष्ठ विद्या का एक सामयिक फल प्रथम श्रेणी में होता है। परन्तु इसके गुण जीवन में सदा साथ देते हैं। प्रथम श्रेणी और श्रेष्ठ विद्या केवल परिश्रम से ही प्राप्त नहीं हो सकते। अधिक परिश्रम करने वाले भी फेल होते हैं और तृतीय श्रेणी में पास होते हैं। पुस्तकों के अध्ययन से उपयोगी विचार और सामग्री का "संचय" करने की योग्यता परिश्रम को सफल बनाती है। यह संचय मधुसंचय की भाँति एक कुशल कर्म है। परीक्षा में इन संचित विचारों की अभिव्यक्ति की "शैली" से श्रेष्ठ फल मिलता है। किन्तु श्रेष्ठता का सर्वोत्तम मानदण्ड विचार और शैली का "धरातल" है। श्रेष्ठ शैली और धरातल का रहस्य अच्छे लेखकों की रचनाओं तथा योग्य जनों के सम्पर्क से विदित हो सकता है। वस्तुतः ऊँचा धरातल श्रेष्ठ विद्या का अन्तिम ही नहीं प्रथम रहस्य भी है। ऊँचे धरातल से परिश्रम, संचय और शैली में श्रेष्ठता आती है तथा वे उत्तम फलदायक बनते हैं। ऊँचे धरातल को प्राप्त करने का साधन शक्ति का उत्कर्ष है।

१०५–छात्रों का अर्थशास्त्र

हमारा देश अधिक सम्पन्न नहीं है। अतः सभी लोगों के जीवन में कुछ न कुछ आर्थिक कठिनाई रहती है। छात्रों को भी इस कठिनाई का सामना करना पड़ता है। बहुत से माता-पिता परिवार के पेट-पालन में ही कठिनाई का अनुभव करते हैं; सन्तान की शिक्षा का व्यय तो उनके

लिये दुर्वह भार बन जाता है। बहुत से छात्रों को अपने विद्या-सम्बन्धी व्यय का कुछ प्रबन्ध स्वयं करना पड़ता है। बहुत से छात्र कठिन आर्थिक स्थिति में विद्याध्ययन करते हैं। वे अपने खाने, पुस्तकें, पहनने, फीस आदि का प्रबन्ध अच्छी तरह नहीं कर पाते। यदि घर से पूरा खर्चा नहीं मिलता तो कॉलिज में दिन भर पढ़कर अतिरिक्त समय में कुछ अर्थोपार्जन करना सरल नहीं है। छात्रों को योग्य काम भी सर्वत्र नहीं मिलता। ऐसे कामों की व्यवस्था हमारे देश में बहुत कम है। फलतः अधिकांश छात्र अभावों और कठिनाइयों के बीच विद्याध्ययन करते हैं।

फिर भी बहुत से छात्रों को देखने से ज्ञात होता है कि वे आर्थिक कठिनाइयों के बीच पढ़ते हुए भी धन का उचित रीति से व्यय नहीं करते। समाज में रहन-सहन, खान-पान आदि में आडम्बर और अपव्यय बहुत है। उनका प्रभाव छात्रों पर भी होता है। कुछ गरीब छात्र धनी छात्रों के अनुकरण में धन का अपव्यय करते हैं। जैसे समाज में लोग श्रीमानों का अनुकरण कर केवल मिथ्या मान के लिये आडम्बर के कार्यों में व्यय करते हैं। सभी लोगों के लिये अपने अल्प धन का सदुपयोग जीवन के लिये हितकर है। छात्रों के लिये भी यह सदुपयोग कल्याणकर है। इस सदुपयोग का मंगल सूत्र यह है कि स्वास्थ्य और शिक्षा के अतिरिक्त अन्य बातों पर कम से कम व्यय करना चाहिये। स्वास्थ्यकारक भोजन और विद्या-सम्बन्धी सामग्री दो ही ऐसी वस्तुएँ हैं जिन पर व्यय करना आवश्यक और लाभकारी है। साज-सज्जा, शृङ्गार और स्वाद की वस्तुओं पर व्यय न करने से जीवन में कोई हानि नहीं, लाभ ही है। ब्रह्मचर्य के सादा जीवन का भी यही उद्देश्य था। वर्तमान छात्रों को भी अपना अर्थ-शास्त्र कल्याणकारी बनाने के लिये कुछ त्याग और संयम से काम लेना होगा।

१०६—सम्पर्क का चमत्कार

हमने विद्या के प्रसंग में अनेक स्थानों पर अपने से अधिक योग्य गुरुजनों के साथ छात्रों के सम्पर्क को विद्या की उन्नति का आवश्यक साधन बताया है। इसमें हमारा उद्देश्य अनावश्यक रूप से गुरुजनों की महत्ता को बढ़ाना नहीं है। सच्चे गुरु वे ही हैं जो अपने आप में इतने महान् हैं कि किसी भी प्रशंसा और सेवा द्वारा उनकी महिमा बढ़ाई नहीं जा सकती। वस्तुतः इसमें हमारा लक्ष्य वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के दलदल में फँसे हुऐ छात्रों के प्रति विद्या के मूल रहस्य को प्रकाशित करना है। गुरु का साक्षात् सम्पर्क ही विद्या का मूल रहस्य है। पुस्तकों का ज्ञान मृत और जड़ है। उसमें जीवन का स्पन्दन नहीं है। पुस्तकों के ज्ञान का छात्रों की आत्मा में सजीव संचार नहीं होता। गुरु का सम्पर्क सजीव प्रकाश और प्रेरणा से परिपूर्ण है। वह पुस्तकों के जड़ ज्ञान में भी चेतना का स्पन्दन संचारित कर देता है। गुरुजनों के इस सम्पर्क का वास्तविक चमत्कार तो अनुभव से ही विदित हो सकता है। जो छात्र विद्या के इस पुरातन मार्ग में विश्वास कर इसका अनुसरण करेंगे उन्हें कुछ समय के बाद गुरु के साथ साक्षात् सम्पर्क का लाभ विदित होगा। वस्तुतः इस लाभ का ज्ञान होने की क्षमता भी गुरुजनों के सम्पर्क से ही प्राप्त होती है। यह विद्या के इस चक्रव्यूह का अद्भुत रहस्य है।

छात्रों के निर्देश के लिये इस सम्बन्ध में इतना संकेत किया जा सकता है कि ज्ञान तो विद्या का बाहरी रूप है; बुद्धि उसकी आन्तरिक शक्ति है। उस शक्ति का स्रोत आत्मा की अनिर्वचनीय प्रेरणा में है। इस प्रेरणा की शक्ति पर ही बुद्धि की शक्ति और गरिमा निर्भर करती है। शक्ति का यह स्रोत योग्य गुरु की चेतना के साथ साक्षात् सम्पर्क से ही उमड़ता है। तभी शिष्य की आत्मा में प्रतिभा और प्रेरणा के ज्वार उमड़ते हैं, जिनकी लहरें ज्ञान के चन्द्रमा को छू लेने को विद्या के आकाश में उठती

हैं। इसी सम्पर्क की बिजली से शिष्य की आत्मा में प्रकाश के वे ज्योतिः सूर्य उदित होते हैं जिनके स्फीत आलोक में ज्ञान का विस्तृत और उज्ज्वल क्षेत्र सुगम दिखाई देता है। इसके बिना विद्याध्ययन अँधेरे जंगल में भटकना है। बिजली की शक्ति के समान अलक्ष्य इस गुरु-सम्पर्क की प्रेरणा से ही शिष्यों के विद्या-दीप तीव्र ज्योति से आलोकित हो सकते हैं। विद्युत के समान अलक्ष्य सम्पर्क की शक्ति का चमत्कार अनुभव से सहज विदित हो जाता है।

१०७—चरित्र का वैभव

शिक्षा की पूर्णता केवन ज्ञानोपार्जन तथा विद्याध्ययन में नहीं है। यह शिक्षा का केवल एक पक्ष, जो निःसन्देह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। ज्ञान और विद्या के आधार पर ही जीवन का प्रासाद निर्मित होता है। किन्तु शिक्षा का सम्पूर्ण अर्थ स्वास्थ्य, विद्या और चरित्र का सन्तुलित विकास है। चरित्र ही व्यक्तित्व के वृक्ष का तना है। इसी के आधार पर खड़ी होकर विद्या की विविध शाखाएँ फलती फूलती हैं। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में विद्या और ज्ञान की तो कुछ व्यवस्था है भी, किन्तु चरित्र के विकास का इसमें कोई स्थान नहीं है। आजकल माता-पिता भी सन्तान के शील-संस्कार और चरित्र-निर्माण की ओर बहुत कम ध्यान देते हैं। यही कारण है कि विद्यालयों में अनुशासन-हीनता बढ़ रही है, किन्तु जीवन की उन्नति और उसकी सफलता तथा पूर्णता के लिये चरित्र के श्रेष्ठ गुणों का बड़ा महत्व है। चरित्र के गुणों से ही मनुष्य उन्नति के पथ में आगे बढ़ता है। अतः समझदार और समर्थ होने पर छात्रों को स्वयं ही चरित्र-निर्माण की ओर ध्यान देना चाहिये।

विद्या तो ज्ञान का उपार्जन है। चरित्र में व्यक्तित्व के वे गुण सम्मिलित हैं जो मनुष्य की दृष्टि से मनुष्य का मूल्य और गौरव बढ़ाते

है। ज्ञान आत्मा के काश का विस्तार है। चरित्र आत्मा की ऊँचाई है। सत्यता, उदारता, सहानुभूति, विश्वासपात्रता, निष्ठा, दृढ़ता, सहिष्णुता, त्याग, साहस, क्षमता आदि चरित्र के ऐसे गुण हैं जिनसे जीवन में गौरव मिलता है। इतिहास के महा-पुरुष इन्हीं गुणों से महान् बने थे। विद्या में अधिक उन्नति के लिये तो बुद्धिकी अधिक आवश्यकता है। किन्तु बुद्धि अधिक न होने पर भी मनुष्य चरित्र के गुणों का यथेच्छ विकास कर सकता है। प्राचीन सन्त अधिक बुद्धिमान न थे किन्तु उनमें चरित्र के गुणों का असाधारण उत्कर्ष हुआ था। किन्तु सरल होने पर भी चरित्र के गुणों का उत्कर्ष कठिन है। इसके लिये आत्मा के प्रयत्न की आवश्यकता होती है। गुणों के महत्व को समझने पर ही यह प्रयत्न सम्भव हो सकता है। महापुरुषों के आदर्श इसमें प्रेरणा देते हैं। भौतिक सभ्यता में बाहरी वैभव सभी को प्रभावित करता है। उसमें सब एक दूसरे से बढ़ जाना चाहते हैं। किन्तु चरित्र के गुणों की होड़ बहुत कम दिखाई देती है। गुणवान् मनुष्यों के सम्पर्क में आने पर भी हमें उन गुणों की अनुकरण की प्रेरणा कम होती है। इसका कारण यही है कि हम उन गुणों के महत्व को और उन गुणों से प्राप्त होने वाले व्यक्तित्व के वैभव को नहीं समझते। यौवन और छात्र-जीवन का वैभव चरित्र के श्रेष्ठ गुणों में ही पूर्ण होता है। अतः इनका महत्व समझ कर इन्हें अपने व्यक्तित्व में प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न कीजिए।

१०८–सा विद्या या विमुक्तये

उपनिषदों में विद्या को मुक्ति का साधन बताया है। सच्ची विद्या वही है जिससे जीवन में मुक्ति मिलती है। उपनिषदों के अनुसार मुक्ति जीवन का परम लक्ष्य है। मुक्ति का अर्थ छुटकारा है। जीवन

में जो अनेक बन्धन हैं उनसे छुटकारा पाना ही मुक्ति है। मुक्ति का अर्थ शरीर का त्याग अथवा संसार से संन्यास नहीं है। शरीर का त्याग मृत्यु है, मोक्ष नहीं। मृत्यु के द्वारा बन्धनों से छुटकारा नहीं मिलता। मृत्यु के बाद पुनर्जन्म होता है। जन्म-जन्मान्तर में जीवन के बन्धनों का क्रम चलता है। अतः मुक्ति किसी न किसी जन्म में और जीवनकाल में ही होगी। जीवनकाल में होने पर मुक्ति में संसार का त्याग भी नहीं हो सकता। शरीर और जीवन के रहते हुऐ संसार का त्याग सम्भव नहीं है। साधु और सन्यासी भी भोजन, शयन आदि के रूप में सांसारिक धर्मों का पालन अवश्य करते हैं।

फिर जीवन-काल में ही सांसारिक धर्मों का पालन करते हुऐ मुक्ति का क्या स्वरूप है ? वस्तुतः मुक्ति एक मन का भाव है। मन ही तो बन्धन कारण है। विषयों और इन्द्रियों के आकर्षण से मन बंधा रहता है। यदि हम इनसे ऊपर उठकर अपने मन को स्वतंत्र बना सकें तो यही मुक्ति है। मुक्ति का वास्तविक अर्थ मन की स्वतन्त्रता है। इस स्वतन्त्रता का अभिप्राय उच्छृङ्खलता नहीं, वरन बन्धन और पराधीनता का अभाव है। जब मन अपने आत्मगौरव में स्थिर रहता है तभी वह स्वतंत्र होता है। मन की यह स्वतन्त्रता विद्या के द्वारा प्राप्त होती है। विद्या ज्ञान का प्रकाश है। विद्या से सभी वस्तुओं, विषयों, लक्ष्यों आदि का वास्तविक मूल्य विदित होता है। मनुष्य इन सब पदार्थों से श्रेष्ठ है। अपने मनुष्य रूप की श्रेष्ठता को अनुभव कर यदि हम किसी भी बात से विचलित न हों, किसी भी आकर्षण में चंचल न हों तथा सभी बातों और वस्तुओं से ऊपर उठते चले जाएँ तो यही मुक्ति का मार्ग है। समता इस मुक्ति का लक्षण है। समता का अर्थ यह है कि न तो जीवन की किसी बात से डरना और दूर भागना तथा न किसी वस्तु के पीछे दौड़ना। अपने व्यक्तित्व की गरिमा में स्थिर रहना ही समता है। इस प्रकार मुक्ति मनुष्य जीवन की उत्कर्ष की पूर्णता और परिणति है।

卐 स्मरण 卐

छात्र जीवन की मन्त्रमाला का ध्यानपूर्वक मनन करने के वाद प्रति वार उन मन्त्रों के तत्व का उपसंहार सार-चिन्तन के रूप में करना चाहिये। ईश्वर भजन की जपमाला का यह विधान छात्र-जीवन की साधना में भी कल्याणकर है। पुनः पुनः स्मरण से जीवन के मंगल-मन्त्र स्मृति में दृढ़ और जीवन में चरितार्थ होते हैं।

(१) छात्र-जीवन मनुष्य-जीवन का सवसे सुन्दर, स्वर्णिम और महत्वपूर्ण काल है। वाल्य, किशोर और यौवन का सवसे मूल्यवान समय विद्याध्यायन में व्यतीत होता है।

(२) यही जीवन के विकास और निर्माण का समय है। शरीर और स्वास्थ्य के साथ साथ विद्या, बुद्धि, ज्ञान, चरित्र आदि का विकास भी इसी समय में होता है।

(३) अतः इस अमूल्य समय का सदुपयोग जीवन के विकास और निर्माण में करना चाहिये। स्वास्थ्य, विद्या और चरित्र में आप कैसी उन्नति कर रहे हैं, इसी के आधार पर छात्र-जीवन के अमूल्य समय का मूल्य आँकिये।

(४) शिक्षा का अर्थ केवल विद्याध्ययन नहीं है। विद्या तो केवल शिक्षा का एक अङ्ग है। स्वास्थ्य, विद्या और चरित्र का सन्तुलित विकास शिक्षा का पूर्ण रूप है।

(५) उत्तम विद्या का सनातन मार्ग गुरु का निकट सम्पर्क है। गुरु की प्रतिभा के सम्पर्क से ही शिष्य की वुद्धि का दीपक प्रकाशित होता है। यह सम्पर्क विद्या का गूढ़तम रहस्य है। गुरु सेवा के द्वारा यह सम्पर्क प्राप्त और सफल होता है।

(६) गुरु की कृपा से प्रकाशित विद्या शिष्य के अपने अभ्यास से सिद्ध होती है। गुरु की कृपा के प्रकाश के विना अभ्यास का परिश्रम

निष्फल होता है। गुरु की कृपा होने पर अल्प परिश्रम से भी उत्तम विद्या प्राप्त होती है।

(७) परीक्षा में विद्या की पूरी परख नहीं होती। जीवन और व्यवसाय में निरन्तर विद्या का उपयोग होता है। अतः परीक्षा ही विद्या का अन्तिम लक्ष्य नहीं है। परीक्षा से आगे वास्तविक और स्थायी योग्यता का उपार्जन छात्र-जीवन को अधिक सफल बनाता है।

(८) किन्तु परीक्षा की प्रणाली प्रचलित है। अतः उत्तम परीक्षाफल भी स्पृहणीय है। उत्तम श्रेणी केवल परिश्रम से प्राप्त नहीं हो सकती। बुद्धि की शक्ति का विकास होने पर परिश्रम अधिक फलदायक होता है। विचार-संचय, अभिव्यक्ति की शैली और विचार के धरातल के योग से परिश्रम उत्तम परीक्षाफल एवं श्रेष्ठ विद्या का साधन बनता है।

(९) चरित्र मनुष्य की सर्वोत्तम विभूति है। चरित्र में ही मनुष्यता का गौरव है। अतः श्रेष्ठ विद्या के साथ साथ चरित्र के उत्तम गुणों को भी व्यक्तित्व में आत्मसात् करना चाहिए।

प्रकाशिका—

श्रीमती शकुन्तला रानी, एम० ए०

संचालिका "भारती मन्दिर"

पन्नालाल पोद्दार की हवेली,

आर्य समाज रोड, भरतपुर (राजस्थान)।